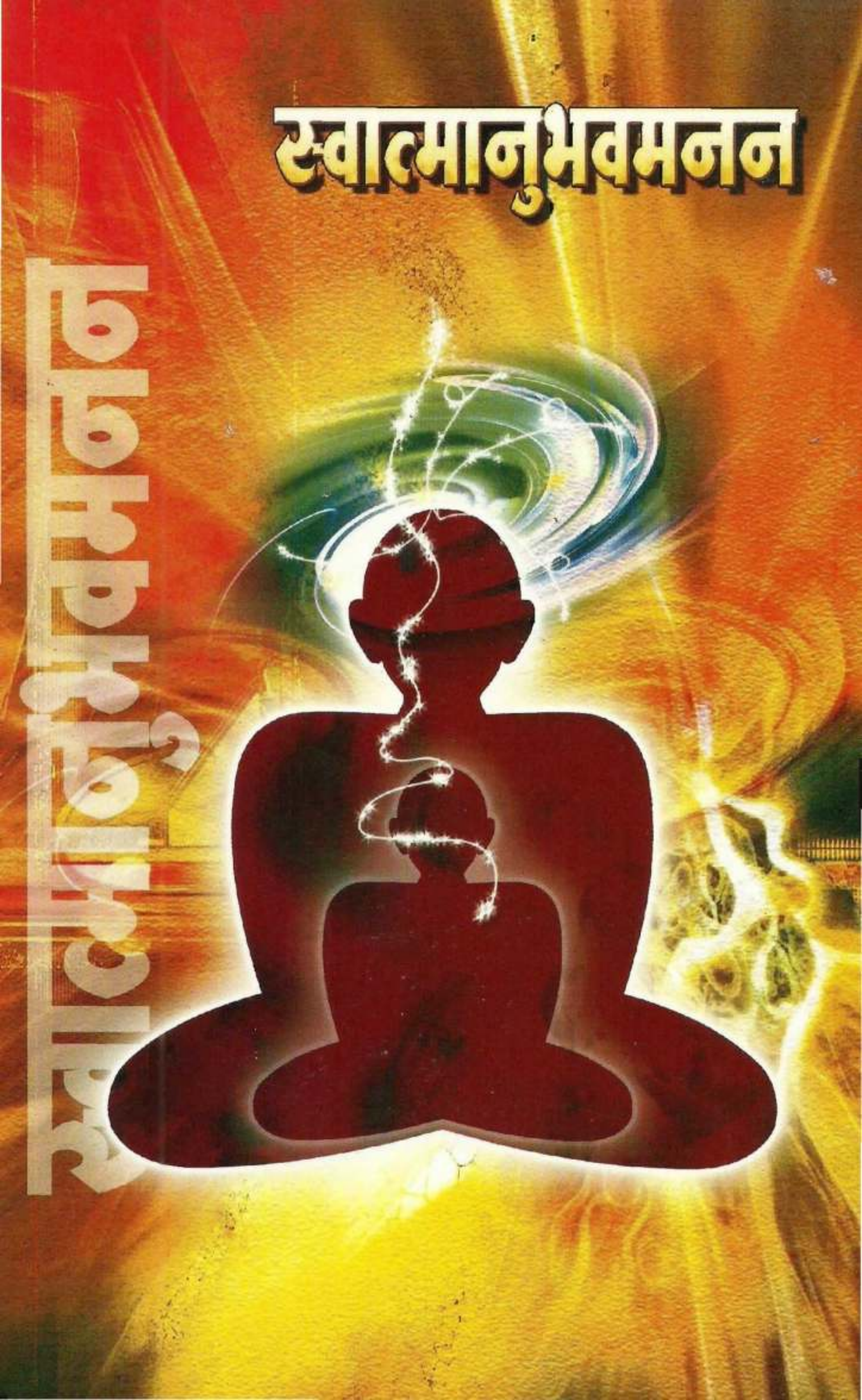
स्वात्मानुभवमनन

ॐ

शुद्ध चिद्रूपोऽहं

ब्रह्मचारी क्षुल्लक धर्मदास विरचित

# स्वात्मानुभवमनन
# एवं
# भाषा वाक्यावली

संपादक

**देवेन्द्र कुमार जैन**

बिजोलियाँ (राजस्थान)

भाषा परिवर्तनकार

**वैद्य पं. गंभीरचंद जैन**

अलीगंज - एटा

प्रकाशक

**वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**

**भावनगर**

⌘ प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट / श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट

५८०, जूनी माणेकवाड़ी,

भावनगर-३६४००१

फोन : (०२७८) ४२३२०७ / २९५१००५

⌘ गुरु गौरव

श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,

पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़

⌘ श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट

विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़

फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२

⌘ श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१

श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : (०३३) २४७५२६९७

अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२, ९३७७१४८९६३

प्रथमावृत्ति : प्रत : ५०० (३१-१२-०७, कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन

पृष्ठ संख्या : १२ + १५२ = १६४

लागत मूल्य : ५५/-

विक्री मूल्य : २०/-

टाईप सेटिंग :

**पूजा इम्प्रेशन्स**

प्लोट नं. १९२४-बी,

६, शान्तिनाथ बंगलोझ

शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास

भावनगर-३६४००१

फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :

**भगवती ऑफसेट**

१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड

बारडोलपूरा,

अहमदाबाद

फोन : ९८२५३२६२०२

અધ્યાત્મયુગસૃષ્ટા પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામી

# प्रकाशकीय

आत्मानुभवी आध्यात्म रसिक पूज्य क्षुल्लक धर्मदासजी द्वारा रचित **`स्वात्नुभवमनन'** एवं **`भाषा वाक्यावली'** नामक युगल ग्रंथों का प्रकाशन करते हुये हमें अपार हर्ष हो रहा है।

ये दोनों ग्रंथ आध्यात्म रस से ओत-पोत एवं आत्मानुभव की प्रयोगात्मक कला दर्शाने वाले अनुपम ग्रंथ हैं। वस्तुतः ग्रंथकर्ता का अनुभव ही इनमें भाषा रूप से अवतरित हुआ है।

आत्मानुभव की उपलब्धि के लिये अंतर की कितनी तड़प, कितनी जागृति, देव-शास्त्र-गुरु के प्रति कितनी अर्पणता एवं वस्तु स्वरूप का कैसा सूक्ष्म एवं गंभीर चिंतन अपेक्षित है, वह सब इसमें वर्णित है।

आत्मा पदार्थ की सूक्ष्मता एवं उसके स्वरूप दर्शक ग्रथों में भाषा की जटिलता आदि ऐसे कारण हैं जिसके कारण सामान्यजन आध्यात्मिक ग्रंथों के पठन-पाठन से दूर भागते हैं किन्तु इस ग्रंथ मैं दैनिक बोल चाल की भाषा में जिस सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन लेखक द्वारा किया गया है वह निश्चित ही आत्म हितैषियों को आध्यात्मिक अध्ययन, मनन एवं चिंतन में गतिशील करने के साथ-साथ आत्महित का सम्यक् मार्ग प्रशस्त करेगा।

अततः प्रस्तुत ग्रंथ पूर्व प्रेमचंदजी बजाज द्वारा प्रकाशक किया गया था। और इस ग्रंथ के हिन्दी में अनुवाद हेतु वैद्य गंभीरचंदजी, अलीगंज एवं संपादन में श्री देवेन्द्र कुमारजी जैन, बिजौलियाँ का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

ग्रंथ के सुंदर टाईप सेटिंग के लिये `पूजा इम्प्रेशन्स' का एवम्

सुंदर मुद्रण कार्य हेतु 'भगवती ऑफसेट' के भी हम आभारी हैं। प्रकाशन के महान कार्य में आर्थिक सहयोग प्रदान करनेवाले के भी हम आभारी हैं। उनकी सूची अन्यत्र दी गयी है।

अंततः प्रस्तुत ग्रंथ के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षुजीव आत्महित करके कल्याणमार्ग को प्राप्त हो, यही भावना।

दि. ३१-१२-२००७<br>(कुंदकुंदाचार्य आचार्य<br>पदवी दिन)

ट्रस्टीगण<br>वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट<br>भावनगर

***इस पुस्तक की किसी भी प्रकार से आशातना या विराधना न हो इसका लक्ष रखने की विनती।***

# लेखक की भूमिका

कहनेवाले मेरे शरीर को क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास कहते हैं, वही मैं, मुझे स्वात्मानुभव की प्राप्ति हुई, उसे प्रकट करता हूँ। मेरे निमित्त से मेरे शरीर का जन्म तो सवाई जयपुर राज्य में जिला सवाई माधौपुर तलुका बोग्ली गाँव बपुई का है। खण्डेलवाल गधिया कुल में श्रावक गोत्री गिरधरवाल चूड़ीवाल के यहाँ मेरा शरीर जन्मा है। शरीर के पिता का नाम श्रीलाल और माता का नाम ज्वालाबाई था। मेरे शरीर का नाम धन्नालाल था। अब मेरे शरीर का नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है। जब मेरे शरीर की उम्र २० वर्ष की हुई, तब निमित्त पाकर मैं झालरापाटन आया। वहाँ जैन का मुनि नग्न श्री सिद्धश्रेणीजी था, उसका मैं शिष्य हो गया। स्वामीजी ने मुझे लौकिक व्रत नियम दिया। सो मैंने संवत् १९२२ से लेकर संवत् १९३५ के वर्ष पर्यंत कायक्लेश तप किया। भावार्थ, १३ वर्ष के भीतर मैंने २००० तो निर्जल उपवास किये, दो-चार जैन मंदिर बनवाये, प्रतिष्ठाएँ कराई तथा सम्मेदशिखर गिरनार आदि जैन तीर्थों की वंदना की, और भी भूशयन पठन-पाठन मंत्रादिक बहुत किया। उससे मेरे अंतःकरण में अभिमान अहंकार रूपी सर्प का जहर व्याप्त हो गया। इसलिए मैं स्वयं को अच्छा-भला मानता था। तथा अन्य को झूठा-खोटा बुरा मानता था। उसी बहिरात्म दशा में दिल्ली, अलीगढ़ और कोयल आदि बड़े शहरों के तेरापंथी श्रावक मेरे पैरों की प्रणाम विनय पूजा करते थे। इस कारण मेरे अंतःकरण में ऐसा अभिमान अज्ञान था कि मैं भला हूँ, श्रेष्ठ हूँ।

अर्थात् उस समय मुझे यह निश्चय नहीं था कि निंदा स्तुति पूजा देह की और नाम की है। पश्चात् भ्रमण करते हुए मैंने बाराड़ देश के अमरावती शहर में जाकर चतुर्मास किया था तथा चतुर्मास में श्रावक मण्डली को राग-द्वेष का उपदेश दिया करता था कि अमुक भला है और अमुक बुरा है।

एक वार कुंजीलालजी सिंधई ने मुझसे कहा कि आप किसको भला बुरा कहते हो - जानते हो - मानते हो। सब पदार्थ अपने-अपने स्वभाव को लिये हुए स्वभाव में जैसे हैं वैसे ही हैं। सर्वप्रथम आप अपने को समझो। इस प्रकार कुंजीलाल जी सिंधई ने मुझसे कहा तो भी मुझे मेरे भीतर स्वानुभव **अंतरात्मदृष्टि** नहीं हुई। निमित्त पाकर कारंजा शहर के पट्टाधीश श्रीमत् देवेन्द्र कीर्ति जी भट्टारक जी महाराज से मैं मिला। उस समय महाराज के शरीर की आयु ९५ वर्षप्रमाण थी। स्वामीजी ने मुझसे कहा - तुम्हें सिद्ध पूजा पाठ आता है कि नहीं मैंने कहा - आता है। तब स्वामी जी बोले कि जयमाला के अंत का श्लोक पढ़ो। तब मैंने अंत का श्लोक पढ़कर सुनाया।

विवर्ण विगंध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह। प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

तब श्री गुरु ने मुझसे कहा कि स्वयं सिद्ध परमात्मा तो काला, गोरा लाल, हरा, शुक्ल आदि वर्ण रहित है; सुगंध दुर्गंध रहित है; क्रोध, मान, माया, लोभ रहित है; पाँच प्रकार के शरीर रहित है, तथा छह काय रहित है, अशब्द है, आकुलता रहित है, वह सर्वत्र विशुद्ध प्रसिद्ध है। देखो ! देखो !! तुम्हें वह परमात्मा दिखाई देता है कि नहीं दिखाई देता है। तब मैं स्वामी जी के श्रीमुख से यह सुनकर चकित चित्त हो गया। स्वामीजी तो मेरे पास से

उठकर भीतर जैन मंदिर में चले गये तथा मैंने अपने मन में बहुत विचार किया। वह प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा मुझे किसी स्थान पर, किसी द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव में दिखलाई दिया नहीं। मैंने विचार किया कि काला पीला लाल हरा धवल काया माया छाया से अलग होकर भी प्रसिद्ध सिद्ध प्रकट है। परंतु मैं तो जिधर देखता हूँ उधर वर्ण-रंग कायादिक ही दिखाई देता है। वह प्रसिद्ध सिद्ध प्रकट है तो मुझे क्यों दिखलाई नहीं देता - इत्यादि बहुत विचार किया। अनंतर स्वामी जी से मैंने कहा कि हे कृपानाथ ! वह प्रसिद्ध सिद्ध प्रकट है सो तो मुझे दिखलाई देता नहीं। तब स्वामी जी बोले कि जो अंधा होता है उसे दिखलाई नहीं देता है। मैंने पुनः स्वामी जी से प्रश्न नहीं किया चुपचाप रहा आया। परंतु जैसे कुत्ते के मस्तक में कीट पैदा हो जावे वैसे ही मेरे चित्त में भ्रान्ति सी पैदा हो गई। उसी भ्रान्ति की अवस्था में ज्येष्ठ महीने में मैं सम्मेदशिखर जी गया। वहाँ भी पहाड़ के ऊपर, नीचे वन में उस प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा को देखने लगा, तीन दिन तक देखता रहा, परंतु वहाँ भी प्रसिद्ध सिद्ध दिखलाई नहीं दिया। पश्चात् लौट कर १० माह बाद देवेन्द्र कीर्ति स्वामी जी के पास आया। स्वामीजी से बिनती की - हे प्रभो ! वह प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा प्रकट है, तो मुझे दिखता नहीं। आप कृपा कर दिखलाओ तब स्वामी जी बोले सब को दिखलाई देता है, उसी को देख, तू ही है इस प्रकार स्वामी जी ने मेरे का में कही। यह सुनते ही मुझे मेरे भीतर अंतरात्मदृष्टि हो गई। वही मैंने इस ग्रंथ में स्पष्ट रूप से कही है।

जैसे 'जैसा पीवे पानी।' 'वैसी बोले वाणी' इस दृष्टांत के द्वारा निश्चय समझना। मेरे अंतःकरण में साक्षात् परमात्मा जागती ज्योति

अचल रूप से स्थापित हुई उसी प्रकार की वाणी मैंने इस पुस्तक में लिखी है। अब किसी मुमुक्षु को जन्म मरण से छूटने की इच्छा हो तथा जागती ज्योति परंब्रह्म परमात्मा का साक्षात् स्वानुभव लेना हो तो भोग पाप अपराध सात व्यसन छोड़कर तथा एकांत में बैठकर इस पुस्तक को मन में मनन करो, वाँचो पढ़ो। परमात्म प्रकाश आदि ग्रंथों से भी इससे स्वानुभव होने की सुगमता का व्याख्यान है। खोटी करनी खोटा कर्म तो छोड़ना योग्य ही है। परंतु इस ग्रंथ को पढ़नेवाले मुमुक्षु से कहता हूँ कि जैसे तुमने खोटी करनी खोटा कर्म छोड़ दिया वैसे ही शुभ भला कर्म - भली करनी का विकल्प भी छोड़कर इस पुस्तक को एकांत में पढ़ना। यह पुस्तक आप ही स्वयं को संबोधन करने के लिये है। दूसरे को संबोधन करने के लिए नहीं। कदाचित कोई प्रकार है तो समझ लेना तब समझाना। बिना समझे नहीं बोलना, नहीं कहना। इस ग्रंथ के पढ़ने से - मनन करने से अवश्य ही स्वानुभव अंर्तदृष्टि होवेगी। संसार में जिसे स्वात्मानुभव आत्मज्ञान नहीं हुआ, ब्रह्म ज्ञान नहीं हुआ उसका व्रत जप तप नियम तीर्थ यात्रा दान पूजा आदि जितना है वह सब ब्रह्मज्ञान के बिना कच्चा है। जैसे रसोई में आटा दाल चावल पंखा आदिक है, परंतु अग्नि बिना सब कच्चा है वैसे ही आत्मज्ञान बिना मुनिपना क्षुल्लकपना आदि सर्व कच्चा है, इसलिये हे मुमुक्षु जन हो ! स्वात्मानुभव की प्राप्ति की प्राप्ति के लिये इस ग्रंथ का और एकांत में अपने मन में मनन करना पढ़ना वांचना।

## अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| १. | मंगलाचरण | १ |
| २. | भेदज्ञान प्रश्नोत्तरी | २ |
| ३. | सिद्धपूजा सार्थ | १७ |
| ४. | कर्त्ता-कर्म विचार | ३६ |
| ५. | स्वरूप मनन | ४२ |
| ६. | आकिंचन्य भावना | ५७ |
| ७. | मेरी भावना | ६३ |
| ८. | आत्म मनन | ७० |
| ९. | भेदविज्ञान भावना | ७८ |
| १०. | परमात्म भावना | ८२ |
| ११. | अंतिम निवेदन | १२७ |
| १२. | भाषा वाक्यावली भूमिका | १३० |
| १३. | भाषा वाक्यावली | १३२ |

## `मैं ज्ञानमात्र हूँ'

⌘

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिनरात रहे तद्ध्यान महीं;
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वरते जयते.

⌘

पावन मधुर अद्भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्रस भर्यां.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्यां,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो हृदयमां रमी रह्यां.

⌘

हुं एक, शुद्ध, **सदा अरूपी**, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते **मारुं जरी**, परमाणुमात्र नथी अरे.

⌘

## सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु

⌘

## एक बार मरण-तुल्य प्रयत्न कर।

ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा ! निगोदमें से निकलकर त्रसपर्याय पाना-यह चिन्तामणि तुल्य दुर्लभ है; तो नर-भव पाना, जैनधर्म मिलना तो महा दुर्लभ है। धन और कीर्ति मिलना यह कोई दुर्लभ नहीं है। ऐसा उत्तमयोग मिला है-यह अधिक समय तक नहीं रहेगा; अतः बिजली की क्षणीक कौंद में मोती-पिरो लेना ही योग्य है। ऐसा योग फिर कहाँ मिलेगा ? अतः तूँ मिथ्यात्व को छोड़ने के लिए एक बार आत्मोत्सर्ग-सम प्रयत्न कर। दुनिया के मान-सन्मान और पैसे की महिमा छोड़कर दुनिया क्या कहेगी उसका लक्ष्य छोड़कर, मिथ्यात्व को त्यागने का एक बार मरण-तुल्य प्रयत्न कर।

(परमागमसार-४८७)

'स्वात्मानुभवमनन एवं भाषा वाक्यावली' पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर २,१००/-

## इसी भव में करने जैसा...

निराकुल-ज्ञायकस्वभाव अनुभव करने का प्रबल पुरुषार्थ कर। तुझे अन्य कुछ आए या न आए, लिखना भी न आए, तो उससे क्या प्रयोजन है ? ज्ञायक-स्वभाव को जानकर-उसका अनुभव करने का प्रबल प्रयत्न कर-यही करने योग्य है। जिसके एक समय के अनुभव के आगे चक्रवर्ती का राज्य भी तुच्छ है, उस अनुभव के लिए प्रचंड पुरुषार्थ कर। दुनिया में कैसे आगे बढ़े व लोगों की गिनती में कैसे आएँ ? अरे रे !! यह सब क्या है ?-भाई ! तेरे अनन्त गुणों की गिनती का तो पार ही नहीं-ऐसा जो अपना ज्ञायक-स्वभाव; प्रभु ! उसके अनुभव का प्रयत्न कर ! इस भव में यही एकमात्र करने योग्य है। (परमागमसार-४८९)

## मिथ्यात्व का भय

कोई छुरी लेकर मारने आए तो भय लगे, सर्प दिखे तो भय लगे, बिच्छु दिखने से डर लगे और शत्रु को देखने से डर लगे। भयंकर रोग को देखने से भी भयभीत हो; परन्तु जो अनन्त-भवों का कर्ता है ऐसे मिथ्यात्वभाव से जीव को भय नहीं लगता। जो इसका भय लगे तो स्वभाव-शरण खोजने निकले। (परमागमसार-५०६)

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास विरचित

# स्वात्मानुभवमनन

अथ स्वात्मानुभवमनन शास्त्र लिखते हैं

## मंगलाचरण

**दोहा** - शब्द ब्रह्म पर ब्रह्म का, एक रूप देखंत।
तत्स्वरूप देखे नहीं, भिन्न-भिन्न सुनसंत।।१।।
नमस्कार व्यवहार में, सदा एक सुन सोय।
याही कारण सैं नमों, परमातम पद जोय।।२।।
जगत जुगत जगदीस लैं, है वो बड़ी सुजाण।
ताकूं बन्दौं भावसों, लो परमातम जाण।।३।।

## गुरु लक्षण

**दोहा** - हमसैं तुमसैं और सैं, इत्यादिक मैं जाण।
सब सैं मोहो हो है सही, उस गुरु कूं प्रणाम।४।

## शिष्य लक्षण

**दोहा** - इच्छा की इच्छा नाहीं, अर इच्छा नहिं और।
इच्छा केवल ज्ञान की, वर्ते निस-दिन सोर।।५।।

**कहा भी है** - तपोभिः क्षीणपापानां **शान्तानां** वीतरागिणाम्।
मुमुक्षुणाप पेक्षोयं आत्मबोधो विधीयते।।६।।

अर्थ - तपस्या के द्वारा जिनका पाप क्षीण हो गया है, जिनका परिणाम शांत है, जो वीतराग हैं, कर्मबंध से छूटने की जिनकी इच्छा है अथवा जिनके मोक्ष की इच्छा है ऐसे मुमुक्षुओं के निमित्त यह स्वात्मानुभवमनन ग्रंथ बनाया है।

## १
## भेदज्ञान प्रश्नोत्तरी

अब जिसको केवल ज्ञान की इच्छा है वह शिष्य सद्गुरु से पूछता है -

**प्रश्न - हे श्री गुरुदेव ! मैं कौन हूँ ?**

**उत्तर** - जिस प्रकार अग्नि में उष्णता है उसी प्रकार जिस वस्तु में ज्ञानगुण है वह जीव है। वही तू मूल से ही जीव है।

**प्रश्न - तो अजीव कौन है ?**

**उत्तर** - तनता मनता वचनता **जड़ता** जड़ सम्मेल।
लघुता गुरुता गमनता ये अजीव के खेल।।

शरीर मन और वचन रूप अवस्था, जड़पना, जड़ से मिलना (बिछुड़ना) हल्कापन, भारीपन और गमनक्रिया ये सब अजीव-पुद्गल की अवस्थाएँ हैं।।

अजीव वस्तु में ज्ञान गुण मूल से ही नहीं है।

**प्रश्न - हे श्री गुरुदेव ! अब क्या प्रश्न करूँ। तन, मन और वचन आदिक तो अजीव का खेल है, परंतु मेरा विलास (स्वरूप) क्या है ?**

**उत्तर** - समता रमता उरधता ग्यायकता सुखभास।
वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव-विलास।।

**अर्थ** - समता, रमता, ऊर्ध्वता, निज स्वभाव में लीनता, ज्ञायकता, सुखरूपता, वेदकता और चेतनता यह सब जीव का विलास है।

**प्रश्न - हे श्री गुरुदेव ! मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अंतःकरण आदि मेरे हैं कि नहीं ?**

**उत्तर** - तुझे जागृत अवस्था में, स्वप्न में अथवा सुषुप्ति में जितनी रचना दिखलाई देती है और नहीं दिखाई देती है वह तुझ स्वरूप नहीं है, किन्तु पृथक्-पृथक् है। तेरी नहीं, नहीं, नहीं।

**प्रश्न - हे श्री गुरुदेव ! जिससे मुझे परम संतोष प्राप्त हो ऐसा अद्भुत ज्ञानोपदेश दीजिए।**

**उत्तर** - श्रवण कर ! तू अपने अंतःकरण में निश्चय कर !! मैं सत्य कहता हूँ।

**प्रश्न - हे श्री गुरु ! कहो, मैं निश्चय करके आपका वचन प्रमाण करूँगा।**

**उत्तर** - सुन, जिसे तू कहता है - यह शरीर मेरा, वह शरीर तो ज़ड़-अचेतन है, तेरा नहीं। तुझसे यह शरीर नहीं बना है। तेरे शरीर के जो माता-पिता है उनके मन में सर्वप्रथम संकल्प-विकल्प हुआ। बाद में दोनों का मैथुन संयोग हुआ। तब माता के रुधिर और पिता के वीर्य से यह शरीर बना है। तुझसे यह शरीर नहीं बना। इसलिये सुन। शरीर तेरा नहीं। जन्म, मरण और नामादिक ये सब शरीर के हैं, तेरे नहीं। राग-द्वेष, हर्ष-शोक और सुख-दुःख मन के धर्म हैं, तेरे नहीं। विचार है सो बुद्धि का धर्म है, तेरा नहीं। जानना-देखना ज्ञान का धर्म है, तेरा नहीं। नहीं जानना, नहीं देखना यह अज्ञान का धर्म है। तथा आकार निराकार है

वह भी तेरे समान नहीं, क्योंकि जिस आकाश में तुझे जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति समय का खेल दिखाई देता है वह तो आकार है और वह आकाश निराकार है, इसलिये आकार निराकार है वह भी तेरा धर्म नहीं। और भी - तेरा नाम न जीव है, न अजीव है, न आकार है, न निराकार है। तेरा नाम न छोटा है, न मोटा है। न तू स्त्री है, न तू पुरुष है, न तू नपुंसक है। तू सर्वनाम को कहनेवाला है तो भी तेरा नाम क्या है, तू तेरे को नहीं जानता था। अब तू तेरे को 'मैं' शब्द द्वारा ऐसा समझ -

मैं अजीव तो जड़-मूल से ही नहीं था। और केवलज्ञानी मुझे शब्द द्वारा जीव ऐसा कहते आये। मैं अजीव से अपना सूर्य-प्रकाशवत् मेल समझता रहा। तब केवलज्ञानी ने मुझे शब्द द्वारा 'जीव' कहा। किन्तु मैं नाम अनाम से ऐसे अलग हूँ जैसे अंधकार से सूर्य अलग है। कहने वालो ! किस नाम से मुझे पुकारोगे ! निंदा, स्तुति और पूजा देह और नाम की होती है। सो मैं देह और नाम भी नहीं।

क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, भय, विस्मय, रति, खेद, चिंता, स्वेद, मद, मोह, निंदा, राग और द्वेष ये अठारह हैं वह भी मैं नहीं। ये अठारह जिसके हैं वह भी मैं नहीं। ये अठारह जिसके नहीं वह भी मैं नहीं। तथा इन अठारह दोषों के आदि, अंत, मध्य जो कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी जो कोई है वही मैं हूँ।

**औदारिक,** वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच शरीर अचेतन अजीव हैं, सो ये तो मैं मूल से ही नहीं हूँ तो अब मैं पाँच शरीर कैसे होऊँगा।

**दूसरे -** मैं न तो जीव हूँ, न अजीव हूँ तथा जीव-अजीव

का जितना खेल है और जीव-अजीव की जितनी रचना है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

और (अन्य) है वह मैं नहीं तथा जो मैं हूँ वह और नहीं। कभी मरा भी नहीं और कभी जन्मा भी नहीं। कभी मरूँगा भी नहीं कभी जन्मूँगा भी नहीं। कदाचित् न मरता है न जन्मता है ऐसा कोई है वही मैं हूँ।

तथा मुझसे पृथक् ये जीव-अजीव, जड़-चेतन, ज्ञान-अज्ञान, बंध-मोक्ष, लोक-अलोक, तू-मैं, यह-वह, हूँ-हूँ, शून्य-अशून्य आदिक हैं, इस कारण मुझे मेरी खबर हुई। मुझसे कोई भी अलग नहीं होता तो मुझे मेरी खबर नहीं होती। मुझसे कोई अलग है, उसके और मेरे सूर्य-अंधकार के समान अंतर है। मैं दर्पणवत् हूँ। उसमें ये जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, निद्रा, जन्म-मरण, नाम-अनाम, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अंतःकरण, तन, मन, धन और वचन आदिक झलकते हैं, परंतु ये तन, मनादिक मुझसे तन्मयी-तत्स्वरूप नहीं हैं। किन्तु अलग के अलग ही हैं।

तथा इन तन, मन, धन, वचन, योग, युक्ति, जगत्, लोक और अलोक का और मेरा एकसा रंग, रूप दिखाई देता है, परंतु एक हैं नहीं। जिस प्रकार दूध से भरे हुए कलश में एक नीलमणि रत्न डाला जाय तो दूध भी उस नीलमणि रत्न के समान एक रूप-रंग का दिखाई देता है, परंतु हैं वे दोनों अलग के अलग ही। उसी प्रकार इन तन, मन, धन, वचन, जगत्, लोक और अलोक का तथा मेरा एकसा ही रंग-रूप दिखाई देता है, परंतु ये तन, मन, धनादिक मेरे समान नहीं, क्योंकि मुझ में ज्ञान गुण है और इन तन, मन, धनादिक में ज्ञान गुण नहीं।

जिस प्रकार एक थाल में जितने दूर तक दूध फैल रहा

है उतने ही दूर तक घी फैल रहा है। उसी प्रकार जितने दूर तक ये तन, मन, धन, वचनादिक लोक अलोक हैं उतने ही दूर तक मेरा ज्ञान गुण विस्तीर्ण हो रहा है। मैं सदा जागृत ही हूँ। मेरे सन्मुख निद्रा आती है और जाती है। निद्रा में स्वप्न आता है और स्वप्न में अनेक चित्र-विचित्र जाल जंजाल दृष्टिगोचर होते हैं। तथा सुषुप्ति में घोर निद्रा आती है, उसमें स्वप्न भी नहीं आता। जिस प्रकार बीज में वृक्ष गुप्त है उसी प्रकार सुषुप्ति में तन, मन, धन वचनादिक गुप्त हैं। यह सब मेरे सन्मुख होता है और बिगड़ जाता है। पुनः होता है और बिगड़ जाता है। अथवा जिस प्रकार समुद्र के ऊपर कल्लोल चलती है उसी प्रकार मेरे ऊपर यह निद्रा, स्वप्न सुषुप्ति की चंचलता होती है। ज्ञानगुण जानने-देखने रूप है। वह मुझसे ऐसा मिला है जैसे अग्नि में उष्णता, सूर्य में प्रकाश। इस प्रकार जानने-देखने रूप ज्ञान गुण मुझसे अलग नहीं।

'मैं' एक दो के प्रथम है वहीं 'सोऽहम्'। अर्हं वही है वही सोऽहम्। जो सोहं है वह और नहीं, जो और है वह सोऽहम् नहीं। आदि अंत मध्य सोऽहम् ही सोऽहम् हूँ। तन, मन, धन सोऽहम् नहीं; बाकी कोई है वही सोऽहम्। मान, मोह, ममता, मद, काया, माया, छाया सोऽहम् नहीं, बाकी बचा वही सोऽहम्। राग-द्वेष, वैर-विरोध, विधि-निषेध है सो सोऽहम् नहीं बाकी कोई है वहीं सोऽहम्। शरीर है वह सोऽहम् नहीं। तथा शरीर के भीतर-बाहर कोई है वह मैं भी नहीं, बाकी कोई बचा वही मैं हूँ। तू, मैं, यह, वह ये चार हैं वह भी मैं नहीं, तथा इन चार के आदि, अंत, मध्य कोई है वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही सोऽहम्। भाव, मन, बुद्धि, विचार है वह भी मैं नहीं तथा इन भावाभाव, मन, बुद्धि, विचार के आदि, अंत, मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई है वही

सोऽहम्। जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, वल, विद्या, अधिकार ये आठ हैं वे भी मैं नहीं, ये आठ जिसके हैं वह भी मैं नहीं तथा जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार के आदि, अंत, मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही सोऽहम्। चौदह गुणस्थान हैं वे भी मैं नहीं तथा इन चौदह गुणस्थानों के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही सोऽहम्। जितना नाम वचन से कहने में आता है वह मैं नहीं तथा जितना नाम वचन से कहने में आता है इसके आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी सोऽहम् नहीं, बाकी कोई बचा वही सोऽहम्। ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों में, चार वेद और अठारह पुराणों में तथा और भी पतड़ा पोथी - शास्त्रों में जिसकी कथनी लिखावट नहीं है, नहीं हुई थी, न होगी ऐसा कोई है वही सोऽहम्। नहीं, नहीं, नहीं, नहीं, नहीं तथा, है, है, है, है, इन दो के आदि, अंत, मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। नहीं, नहीं, नहीं तथा है, है, है, है ये दो हैं वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही मैं हूँ। क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः इत्यादिक अक्षर स्वर व्यंजन मात्रा हैं वह भी मैं नहीं। इन स्वर, व्यंजन मात्रा रूप अक्षरों के आदि, अंत और मध्य कोई है वही भी मैं नहीं। तथा इन अक्षर, स्वर, व्यंजन, मात्रा से जो कहने में आता है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही मैं हूँ। १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ये नौ अंक हैं वह भी मैं नहीं, इन नौ अंकों के प्रथम, इन नौ अंकों के अंत और इन नौं अंकों के मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही मैं हूँ। शून्य अशून्य है वह भी

मैं नहीं, शून्य अशून्य के प्रथम जो है वह भी मैं नहीं, शून्य अशून्य के अंत जो है वह भी मैं नहीं तथा शून्य अशून्य के मध्य जो कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही मैं हूँ। आदि, अंत, मध्य है वह भी मैं नहीं, इन तीन के आदि कोई है प्रथम है वह भी मैं नहीं, इन तीन के अंत कोई है वह भी मैं नहीं तथा इन तीन के मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही सोऽहम्।

मनुष्य, देव, तिर्यंच, और नारकी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक, तन, मन, धन, वचन, वेद, भाव-अभाव कषाय, लेश्या, परिणाम, काया, माया, छाया, बंध-मोक्ष, पुण्य-पाप, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, योग, युक्ति, जगत, संसार, द्वीप-समुद्र, पर्वत, जन्म-मरण, नाम-अनाम, आकाश-पाताल, धर्म-अधर्म, कर्म मर्म, जाति पात, कुल, विद्या, बुद्धि, ज्ञान-अज्ञान, चेतन-अचेतन, जीव-अजीव, सूर्य, चंद्र, तारा, स्वर्ग, आकाश, वायु, पानी, अग्नि, शील, नरम-कठोर, नाम-अनाम, आत्मा-अनात्मा, बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा, सकल परमात्मा, निकल परमात्मा, ब्रह्मा, ब्रह्म, अब्रह्म, आकार-निराकार, मूर्ति-अमूर्ति, लोक-अलोक ये सब ही मुझसे अलग हैं। किस प्रकार अलग हैं ? जिस प्रकार सूर्य से अंधकार अलग है उसी प्रकार ये सब मुझसे अलग हैं।

यहाँ 'मैं' शब्द के द्वारा मेरा स्व स्वरूप उसके **अव्याप्तपने** का मनन भले प्रकार जैसा का तैसा, जैसा था, वह का वही सिद्ध हुआ।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात हैं। इन सात में छह तो अजीव हैं। इन छह के प्रथम जीव है। जीव के प्रथम कोई है, उस प्रथम के भी प्रथम कोई है, उसके

भी प्रथम कोई है, इस प्रकार जहाँ तक अन्य वस्तु है वहाँ तक तो मैं नहीं। अन्य वस्तु के प्रथम कोई है वह सोऽहम्।

तथा जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नौ हैं वह भी मैं नहीं; इन नौ के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही सोऽहम्।

वचन से कहने में आता है और वचन से कहने में नहीं आता है वह भी मैं नहीं, तथा वचन से करने में आता है और वचन से करने में नहीं आता है उसके आदि अंत मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई बचा वही सोऽहम्।

मन-वचन के अगोचर है और मन-वचन के अगोचर नहीं वह भी मैं नहीं; तथा मन-वचन के गोचर है और मन-वचन के अगोचर है इसके आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं; बाकी कोई है वही सोऽहम्।

'बाकी' नाम वचने का है अर्थात् सर्व अजीव-जड़ वस्तु से अपने स्व स्वरूप को मूल से ही भिन्न रूप मनन करे उसका नाम 'बाकी', उसी का नाम बचना है।

जिसको केवल ज्ञानी परमात्मा भी नहीं जानता तथा और भी कोई ज्ञानी-अज्ञानी, जीव-अजीव उसको नहीं जानता। लोक-अलोक, स्वर्ग, मोक्ष-बंध, संसार-जगत में उसको जानने-देखने वाला कोई भी नहीं ऐसा कोई है वही सोऽहम्।

जिस प्रकार अंधकार सूर्य को न देखता है, न जानता है उसी प्रकार जड़ अचेतन-अजीव-अज्ञान है सो केवल ज्ञान स्वरूपी सूर्य को न देखता है, न जानता है। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का फल है वह भी मैं नहीं। तथा इन ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान के फल के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं;

बाकी कोई है वही सोऽहम्।

कर्ता, कर्म, क्रिया और क्रिया का फल है वह भी मैं नहीं तथा इन कर्ता, कर्म, क्रिया, और क्रिया के फल के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ।

जिस प्रकार सूर्य और प्रकाश का मेल है उसी प्रकार मेरा और ज्ञान का मेल है।

शास्त्र है वह ज्ञान नहीं, क्योंकि शास्त्र कुछ जानता नहीं। शास्त्र जड़ है, इसलिये शास्त्र और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है। शब्द वचन है वह भी ज्ञान नहीं, क्योंकि शब्द-वचन कुछ जानता नहीं, इसलिये ज्ञान और शब्द-वचन में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

रूप है वह ज्ञान नहीं, क्योंकि रूप कुछ जानता नहीं, इसलिये ज्ञान और रूप में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

वर्ण है वह ज्ञान नहीं, क्योंकि वर्ण कुछ जानता नहीं, इसलिये वर्ण और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

गंध है वह ज्ञान नहीं, क्योंकि गंध कुछ जानता नहीं, इसलिये गंध और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

रस है वह ज्ञान नहीं, क्योंकि रस कुछ जानता नहीं, इसलिये रस और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

स्पर्श है वह ज्ञान नहीं, क्योंकि स्पर्श कुछ जानता नहीं, इसलिये स्पर्श और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

धर्म-अधर्म द्रव्य हैं वे ज्ञान नहीं, क्योंकि धर्म-अधर्म द्रव्य कुछ जानते नहीं, इसलिये धर्म-अधर्म द्रव्य और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

काल-आकाश द्रव्य हैं वे ज्ञान नहीं, क्योंकि काल-आकाश द्रव्य

कुछ जानते नहीं, इसलिये काल-आकाश द्रव्य और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म हैं वे ज्ञान नहीं, क्योंकि द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म कुछ जानते नहीं, इसलिए द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म तथा ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

औदारिक वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच शरीर है वे ज्ञान नहीं, क्योंकि ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर कुछ जानते नहीं, इसलिये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर तथा ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

और भी जन्म मरण नामादिक हैं वे ज्ञान नहीं, क्योंकि ये जन्म मरण नामादिक कुछ जानते नहीं, इसलिये इन जन्म-मरण नामादिक में तथा ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि इन पाँच प्रकार की निद्रा में और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है। स्वप्न में जितनी रचना दिखाई देती है, उसमें और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है। जागृत अवस्था में यह जगत-संसार दिखाई देता है, उसमें और ज्ञान में सूर्य और अंधकार कासा अंतर है। तथा तन, मन, धन, वचन में और ज्ञान में सूर्य और अंधकार कासा अंतर है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अंतःकरण, रजोगुण, तमोगुण, सत्त्वगुण और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

यहाँ एक यह भी समझ लेना कि जिस प्रकार अग्नि में उष्णता गुण है, उसी प्रकार शब्द-वचन में कहने का गुण है। शब्द-वचन में ज्ञान गुण देखना-जानना मूल से ही नहीं है। जिस प्रकार सूर्य

में प्रकाश गुण है उसी प्रकार ज्ञान में देखने जानने का गुण है। भावार्थ - इस प्रकार ज्ञान-अज्ञान का अंतर है।

शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत इनमें और ज्ञान में सूर्य और अंधकार का सा अंतर है।

ज्ञान और अज्ञान का परस्पर प्रदेशभेद है। ज्ञान और अज्ञान का परस्पर लक्ष्य लक्षण भेद है। ज्ञान और अज्ञान का परस्पर आधार-आधेय संबंध नहीं है। ज्ञान और अज्ञान में परस्पर सूर्य और अंधकार का सा अंतर मूल से ही है। ज्ञान और अज्ञान का परस्पर विरोधभेद है। ज्ञान और अज्ञान का परस्पर सूर्य-प्रकाशवत् न एकपना है, न एकपना हुआ था और न एकपना होगा। ज्ञान है वह ज्ञान ही है, अज्ञान है वह अज्ञान ही है। यहाँ विशेष और समझना कि ज्ञान की अपेक्षा अज्ञान है तथा अज्ञान की अपेक्षा ज्ञान है। अपेक्षा रहित वस्तु विचारिये तो न ज्ञान है और न अज्ञान है अर्थात् वस्तु जैसी है वैसी है, वह है ही है। यहाँ वस्तु के तत्वस्वरूप तन्मीयता में तर्क-विवाद को अवकाश नहीं। श्लोक -

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूप गुप्ता निवसन्ति नित्यम्।
विकल्पजालच्युत **शांतचिन्तास्त** एव साक्षादमृतं **पिवन्ति।**

जो नय पक्षपात को छोड़कर सदा (अपने) स्वरूप में गुप्त होकर निवास करते हैं वे ही, जिनका चित्त विकल्प जाल से रहित शांत हो गया है ऐसे होते हुए, साक्षात् अमृतपान करते हैं।

जो दो नयों के पक्षपात को छोड़कर सदा निर्विकल्प निश्चय रूप अपने स्वरूप में अंतर्लीन होकर रहते हैं, विकल्प जाल से च्युत होकर शांतचित्त वाले वे साक्षात् अमृतपान करते हैं अर्थात् स्वानुभवगम्य निर्विकल्प सुख का भोग करते हैं।

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वविलि पक्षपातौ।

यस्तत्वेवदी च्युतः पक्षपात स्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव।

जीव कर्मों से बँधा है यह एक नय का पक्ष है, कर्मों से नहीं बँधा है यह दूसरे नय का पक्ष है। जो तत्ववेदी (स्वरूपानुभूति संपन्न जीव) सविकल्प दोनों नयों के पक्ष से रहित है उसे चित्स्वरूप जीव निरंतर चितरूप ही है। अर्थात् उसे स्वरूप से जीव जैसा है वैसा ही निरंतर अनुभव में आता है।

**तथा** - निश्चय-विवहार में जगत भरमायो है।

तथापि, तन, मन, धन वचनादिक के द्वारा स्वानुभव मनन करना योग्य है। अथवा मैं, तू, यह, वह इन चार के द्वारा स्वानुभव स्वरूप का मनन करना योग्य है। जैसे सूर्य का प्रकाश, .... और पृथ्वी का मेल है, परंतु दोनों तन्मय नहीं, वैसे ही ज्ञान और अज्ञान का मेल है, परंतु ज्ञान और अज्ञान दोनों तन्मय नहीं। जैसे सूर्य-प्रकाश का या अग्नि-उष्णता का एक तन्मयी मेल है वैसे ज्ञान-अज्ञान का मेल न जानना, न मानना और न मनन करना। जो सब को देखता-जानता है और आपको भी देखता-जानता है वह केवलज्ञान है। जितना अजीव-पुद्गल का खेल है वह सब अज्ञान ही है। ज्ञान-अज्ञान का अग्नि-उष्णता के समान मेल न हुआ, न होगा और न है।

**जैसे** अंधकार की अपेक्षा सूर्य है वैसे ही अज्ञान की अपेक्षा **मैं केवलज्ञान हूँ। योगीन्द्र** देव रचित परमात्म प्रकाश ग्रंथ में कहा **है - हे** प्रभाकर भट्ट। धर्म अर्थात् मुनिधर्म, अर्थ अर्थात् संसार का प्रयोजन और काम अर्थात् विषयाभिलाषा ये तीनों ही आत्मा से भिन्न हैं, ज्ञानस्वरूप नहीं।

हा हा हा **मैं** अनात्मा अजीव अचेतन अज्ञान मूल से ही नहीं, मैं तो ज्ञानमयी आत्मा हूँ। केवल (मात्र) ज्ञान में त्याग-ग्रहण संभव

नहीं। जैसे सूर्य और अंधकार का परस्पर विरोध तथा **प्रदेशभेद** मूल से ही है वैसे ही ज्ञान और अज्ञान का परस्पर विरोध और **प्रदेशभेद मूल** से ही है। इसलिये ज्ञान से भिन्न वस्तु का स्वभाव में तन्मयी त्याग-ग्रहण संभव नहीं, क्योंकि ज्ञान वस्तु अज्ञान वस्तु को तन्मयी होकर यदि ग्रहण कर लेवे तो अज्ञान भी ज्ञान से तन्मयी हो जाय। तथा अज्ञान वस्तु ज्ञान वस्तु को तन्मयी होकर यदि ग्रहण कर लेवे तो ज्ञान भी अज्ञान से तन्मयी हो जाय, इसलिये वस्तु के स्वभाव में परस्वभाव का कदाचित् किसी प्रकार भी त्याग-ग्रहण संभव नहीं।

**दोहा** - मेरा मोकूँ ज्ञान है सो ही हुआ सुजान।
मेरा ही मुझ में रहा, निज आत्मा तू **मान**।।
नहिं सोऽहम् नहिं और है या में फेर न सार।
निज आतम अनुभव लिया किसका करूँ विचार।।

**प्रश्न - दुनिया दोरंगी मैं इस सराय का कहूँ, हाय हाय कहूँ, यह क्या है ?**

**उत्तर** - यह सराय है। इसमें परदेशी मुसाफिर आते हैं, कुछ काल विश्राम लेकर चले **जाते** हैं, कोई-कोई प्रति दिन आते हैं और चले जाते हैं।

**प्रश्न - इस सराय का क्या नाम है ?**

**उत्तर** - 'मैं' इसका नाम यही है।

**प्रश्न - इस सराय में कौन आता है, कौन जाता है ?**

**उत्तर** - इस 'मैं' **सराय में** दोनियाँ आती है, दोनियाँ जाती है।

**प्रश्न - दोनियाँ क्या ?**

**उत्तर** - दोनियाँ कहने से दो समझना ।

**प्रश्न - दो क्या ?**

**उत्तर** - पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, भला-बुरा, नाम-अनाम, सुख-दुःख, लेना-देना, जीव-अजीव, चेतन-अचेतन, ज्ञान-अज्ञान, राग-द्वेष, अस्ति-नास्ति, विधि निषेध, रंग-बिरंग, वर्ण-अवर्ण, भोगी-योगी, शील-कुशील, बंध, मोक्ष, व्रत-अव्रत, न्याय-अन्याय प्रमाण-अप्रमाण, इत्यादि। ये दो-दो हैं, इसी का नाम दोनियाँ है, इसी का नाम द्वैत है, यही द्विविधा है, यही दुष्ट है। इस दो-दो की भूमिका में सराय है। उसमें ये सब अनंत काल से आते हैं और जाते हैं।

**प्रश्न - कहाँ से आते हैं और कहाँ जाते हैं ?**

**उत्तर** - जैसे बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज, वैसे ही 'मैं' सराय भूमिकायें इन दो-दोका संबंध है। प्रथम 'मैं' सराय है, वह भूमिका है। उसके ऊपर ये दो-दो हैं।

**प्रश्न - किस प्रकार हैं ?**

**उत्तर** - प्रकट हैं, सुनो, मैं पापी-पुण्यवान, मैं धर्मी-अधर्मी, मैं भला-बुरा, मैं नामी-अनामी, मैं सुखी-दुखी, मैं जीव-अजीव, मैं चेतन-अचेतन, मैं ज्ञानी-अज्ञानी, मैं रागी-द्वेषी, मैं हूँ-नहीं, मैं मरा-जिया, मैं रंग-बेरंग, मैं वर्ण-अवर्ण, मैं भोगी-योगी, मैं सुशील-कुशील, मैं बद्ध-मुक्त, मैं व्रती-अव्रती, मैं न्यायी-अन्यायी, मैं प्रमाण-अप्रमाण, इत्यादि यह प्रथम एक 'मैं' सराय भूमिका के ऊपर यह पूर्वोक्त दोरंगी दुनियाँ है।

आत्मानुशासन में गुणभद्राचार्य ने अपने भाई लोकसेन को इस प्रकार कहा कि तू इतना जप तप व्रत शील नियम धर्म करता है तो भी तू मिथ्यादृष्टि भोगी के समान ही है। तब लोकसेन ने कहा कि मैंने पाप का त्याग कर दिया। गृहस्थाश्रम के आरंभादिक पाप का त्याग कर मैं नग्न दिगंबर मुनि हो गया, अब क्या त्याग कराते हो ? तब गुणभद्राचार्य ने कहा - लोकसेन। सुनो 'मैं मुनि

हो गया' इस 'मैं' को और त्याग दे। जिसकी 'मैं' मूल से ही छूट गई उसकी दुनियादारी-द्विविधा-द्वैतता भी मूल से ही 'मैं' के साथ चली गई। इस संसार का मूल 'मैं' है। जैसे अंधकार से सूर्य सदा से ही अलग रहता है वैसे इस 'मैं' से मूल से ही जो अलग रहता है वही धन्य है जो कोई गुरु इस 'मैं' से अलग कर देवे उस गुरु के चरणों में नमोस्तु करता हूँ।

जिस प्रकार कोई सर्वांग सर्व बंध से बँधा है। वह अपने-आप नहीं छूटता दूसरा कोई छोड़ने वाला होवे तब बंध से छूटे। उसी प्रकार यह जीव 'मैं' में फंस रहा है, उसको गुरु शब्द हस्तावलंब देकर निकाल देता है। इस प्रकार जो 'मैं' इस फंद में से निकाल देता है उस गुरु के ऐसे अपूर्व उपकार को जो लोपता है वह सर्व पातगीन में और सर्व पापियों में शिरोमणि, सर्व पापियों में पापी है। गुरु बिना ज्ञान ऐसा ही है जैसे अंधकार में दर्पण।

श्री सद्‌गुरु के उपदेश से मेरी काललब्धि पाक गई। उस द्वारा तथा 'मैं' शब्द द्वारा मनन कर 'मैं' इसके प्रथम कोई है, 'मैं' इसके अंत में कोई है, तथा 'मैं' के मध्य कोई है वह सोऽहम् नहीं। जो 'मैं' है वह भी सोऽहम् नहीं बाकी कोई मूल से ही है वही 'सोऽहम्' हूँ। 'मैं' मूल से ही नहीं, अनहोना वह 'मैं' बनकर 'मैं' के द्वारा स्वस्वरूपका मनन करता हूँ।

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

## २
## सिद्ध पूजा सार्थ

### अथ सिद्धों की पूजा प्रारंभ

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्ठितं
वर्गापूरित दिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धि तत्त्वान्वितम्।
अंतः पत्रतटे ष्वनाहतयुतं ह्रींकार संवेष्ठितं
देवं ध्यायाति यः समुक्ति शुभगो बैरीभकण्ठीरवः।।

ऊपर और नीचे रेफयुक्त तथा बिन्दु संयुक्त हकार लिखे, उसे ब्रह्म स्वरों से वेष्ठित करे, दिशागत कमल पत्तों को वर्गों से पूरित करे, तथा पत्तों की सन्धियों में तत्त्व अर्थात् णमो अरहंताणं लिखे, पत्तों के भीतर किनारों पर ओंकार लिखे, अनान्तर संपूर्ण यंत्र को ह्रींकार से वेष्ठित करे। इस देव का जो ध्यान करता है वह वैरी-कर्म रूपी हाथी के विदारण के लिए सिंह के समान होकर उत्तम मुक्ति का भोक्ता होता है। ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्, अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

## अथ भाव पूजा

निजमनोमणि भाजन भारया समयसार सुधारसधारया।
सकल बोध कला रमणीयकं सहजसिद्ध महं परिपूजये।।१।

अपने मनरूपी मणि के पात्र में भरे हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी अमृत रस की धारा से सम्यग्ज्ञान की समस्त कलाओं से सुशोभित सहजसिद्धपरमात्मा की मैं पूजा करता हूँ।।१।।

ओं ह्रीं अर्हं असिआउसा अनाहत परब्रह्मणे श्री सिद्ध चक्राधिपतये नमः।

संमत्तं-णाण-दंसण-वीरिय सुहुमं तहेब अवगहणं।
अगुरुलहु मव्वाबाहं अठ्ट गुणाहोंति सिद्धाणं।।

क्षायिक सम्यक्त्व, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनंत वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरुलघु और अव्याबाध ये सिद्धों के आठ गुण हैं।

सिद्धगुणेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

सहजकर्म कलंकविनाशनैरमलभाव सुवासुसु चंदनैः।
अनुपमान गुणावलिनायकं सहजसिद्धमहं परिपूजये।।२।।

सहजरूप से कर्म कलंक को नष्ट करने वाले ऐसे निर्मल भावरूपी सुवासित चंदन से अनुपम गुण समूह के नायक सहज सिद्धपरमात्मा की मैं पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं अर्हं असि आ उसा अनाहत पर ब्रह्मणे श्री सिद्धचक्राधिपतये संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

सहजभावसुनिर्मल तन्दुलैः सकल दोष विशाल विशोधनैः।
अनुपरोध सुबोधनिधानकं सहज सिद्धमहं परिपूजये।।३।।

बड़े से बड़े समस्त दोषों के शोधन करने में समर्थ सहज सिद्धपरमात्मा की मैं पूजा करता हूँ।।३।।

ओं ह्रीं - अक्षय पद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।३।।

समयसार सुपुण्य सुमालया सहज कर्मकरेण विशोधया।
परमयोग बलेन वशीकृतं सहजसिद्धमहं परिपूजये।।४।।

सहज स्वानुभूतिरूप क्रिया रूपी कर के द्वारा शोधी गई समयसार रूपी सुंदर पुष्पों की माला से परम योग के बल से वश में किये गये सहज सिद्ध परमात्मा की मैं पूजा करता हूँ।।४।।

ओं ह्रीं... कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।४।।

अकृतबोध-सुदिव्य-नैवेद्य कै विहित-जाति-जरा-मरणांत कै।
निरवधि-प्रचुरात्म-गुणालयं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।५।।

जन्म, जरा, और मरण का अंत करने वाले सहज ज्ञान रूपी सुंदर नैवेध से अमर्वाद और प्रचुर आत्म-गुणों के निकेतन सहज सिद्धपरमात्मा की मैं पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं... क्षुधारोग विध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५।।

सहज-रत्नरुचि-प्रतिदीप कै रुचिविभूति-तमः प्रविनाशनैः।
निरवधि-स्वविकास-विकासनं सहज सिद्धमहं परिपूजये।।६।।

भोगाकांक्षारूपी अंधकार को नष्ट करने वाले सहज सम्यक्त्वरत्मन रूपी दीपक से निरवधि आत्म विकास द्वारा विकास को प्राप्त हुए सहज सिद्धपरमात्मा की मैं पूजा करता हूँ।।६।।

ओं ह्रीं...मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

निजगुणाक्षय-रूपं-सुधूपनैः स्वगुण-घाति-भल-प्रविनाशनैः।
विशद-बोध-सुदीर्घ-सुखात्मकं सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।७।।

आत्मगुणों के घातक कर्ममलों को नष्ट करने वाली अपने अक्षय गुणरूपी धूप से विशद बोध और अनंत सुख स्वरूप सहज सिद्ध की मैं पूजा करता हूँ।

ओं ह्रीं... अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।७।।

परम-भाव-फलावलि-सम्पदा सहज-भाव-कुभाव-विशोधया।

निज-गुण-स्फुरणात्म-निरंजन सहज-सिद्धमहं परिपूजये।।८।।

सहजरूप से कुभाव रागादि भावों का शोधन करने वाली उत्कृष्ट भाव रूपी फलावलि सम्पत्ति से अपने गुणों के प्रकट होने से निरंजन पद को प्राप्त हुए सहज सिद्ध की मैं पूजा करता हूँ।।९।।

ओं ह्रीं... मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।८।।

नेत्रोन्मील-विकास-भाव-निवहैरत्यन्त-बोधाय वै।
वार्गन्धाक्षत-पुष्पदाय-चरुकै सद्दीप-धूपैः फलैः।।
यश्चिन्तामणि-शुद्ध-भाव-परम-ज्ञानत्मकैरर्चयेत्।
सिद्धां स्वादमगाध-बोधममलं संचर्चयामोवयम्।।९।।

अंतरंग नेत्रोन्मीली विकास को प्राप्त हुए भाव समूह के द्वारा जो पुरुष चिंतामणि के समान शुद्ध भाव और परम ज्ञान रूपी जल, गंध, अक्षत, पुष्पमाला, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से आत्मस्वादी, अगाध बोध के धनी ऐसे अचल सिद्ध की पूजा करता है उसके लिये वह पूजा परम ज्ञान प्राप्ति का कारण होती है, अतः हम भी उन सिद्ध परमात्मा की पूजा करते हैं।।९।।

ओं ह्रीं... अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीतिं स्वाहा।

श्री ओं नमः सिद्धं।

## अथः कर्मदहन मंत्र प्रारंभ

ओं, ह्रीं सर्वकर्म रहिताय सिद्धायनमः (ओं, ह्रीं सर्वकर्मरहित सिद्धों को नमस्कार हो)।।१।। ओं ह्रीं सिद्ध सम्यक्त्वगुणाय नमः (सिद्धस्वरूप सम्यक्त्वगुण को नमस्कार हो) २. ओ. ह्रीं सिद्ध दर्शन गुणाय नमः (ओं ह्रीं सिद्ध स्वरूप दर्शन गुण को नमस्कार हो) ।।४।। ओं ह्रीं, सिद्धवीर्य गुणाय नमः (ओं ह्रीं सिद्ध स्वरूप वीर्य गुण को नमस्कार हो) ।।५।। ओं ह्रीं सिद्ध सूक्ष्म गुणाय नमः (ओं ह्रीं सिद्धस्वरूप सूक्ष्मगुण को नमस्कार हो)।।६।। ओं ह्रीं सिद्ध अवगाहनगुणाय नमः

(ओं ह्रीं सिद्ध स्वरूप अवगाहन गुण को नमस्कार हो)।।७।। ओं, ह्रीं सिद्ध अगुरुलघुगुणाय नमः (ओं ह्रीं सिद्ध स्वरूप अगुरुलघु गुण को नमस्कार हो)।।८।। ओं ह्रीं सिद्ध अव्याबाधगुणाय नमः (ओं ह्रीं सिद्ध स्वरूप अगुरुलघु गुण को नमस्कार हो)।।८।। ओं ह्रीं सिद्ध अव्याबाधगुणाय नमः (ओं ह्रीं सिद्ध स्वरूप अव्याबाध गुण को नमस्कार हो)।।९।। ओं ह्रीं केवल ज्ञानातिशय सम्पन्नाय नमः (ओं ह्रीं केवल ज्ञान अतिशय युक्त परमात्मा को नमस्कार हो)।।१०।।

ओं ह्रीं मतिज्ञानावरणीय कर्मरहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मतिज्ञानावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।११।। ओं ह्रीं श्रुत ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं श्रुत ज्ञानावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।१२।। ओं ह्रीं अवधि ज्ञानावरणीय कर्मरहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अवधिज्ञानावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।१३।। ओं ह्रीं मनः पर्यय ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मनः पर्यय ज्ञानावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।१४।। ओं ह्रीं केवल-ज्ञानावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं केवल ज्ञानावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।१५।।

ओं ह्रीं सकल दर्शनावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सकल दर्शनावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।१६।। ओं ह्रीं चक्षु दर्शनावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं चक्षु दर्शनावरण कर्म रहित सिद्ध के लिये नमस्कार हो)।।१७। ओं ह्रीं अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अचक्षुदर्शनावरण कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१८। ओं ह्रीं अवधिदर्शनावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अवधिदर्शनावरण कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१९।

ओं ह्रीं केवल दर्शनावरणीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं केवल दर्शनावरण कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२०।। ओं ह्रीं निद्राकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं निद्राकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२१।। ओं ह्रीं प्रचला कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रचला कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२३।। ओं ह्रीं प्रचला-प्रचलाकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रचला प्रचला कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२४।। ओं ह्रीं स्त्यानगृद्धिकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं स्त्यानगृद्धि कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२५।। ओं ह्रीं येदनीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वेदनीय कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२६।। ओं ह्रीं सातावेदनीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सातावेदनीय कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२७। ओं ह्रीं असातावेदनीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं असातावेदनीय कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२८।।

ओं ह्रीं मोहनीय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मोहनीय कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।२९।। ओं ह्रीं मिथ्यात्व कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मिथ्यात्व कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३०।। ओं ह्रीं सम्यग्मिथ्यात्व कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सम्यग्मिथ्यात्व कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३१।। ओं ह्रीं सम्यक् प्रकृति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सम्यक् प्रकृति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३२। ओं ह्रीं अनंतानुबंधि क्रोध रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अनंतानुबंधी क्रोध रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३३।। ओं ह्रीं अनंतानुबंधि मान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अनंतानुबंधी मान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३४।। ओं ह्रीं अनंतानुबंधि माया रहिताय

सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अनंतानुबंधी माया रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३५।। ओं ह्रीं अनंतानुबंधिलोभ रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अनंतानुबंधी लोभ रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३६।। ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान क्रोध रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान क्रोध रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३७ ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान मान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान माया रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३८।। ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान माया रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान माया रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।३९।। ओं ह्रीं अप्रत्याख्यानलोभ रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अप्रत्याख्यान लोभ रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४०।। ओं ह्रीं प्रत्याख्यान क्रोध रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रत्याख्यान क्रोध रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४१।। ओं ह्रीं प्रत्याख्यान मान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रत्याख्यान मान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४२।। ओं ह्रीं प्रत्याख्यान माया रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रत्याख्यान माया रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४३।। ओं ह्रीं प्रत्याख्यान लोभ रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रत्याख्यान लोभ रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४४।। ओं ह्रीं संज्वलन क्रोध रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं संज्वलन क्रोध रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४५।। ओं ह्रीं संज्वलन मान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं संज्वलन मान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४६।। ओं ह्रीं संज्वलन माया रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं संज्वलन माया रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४७।। ओं ह्रीं संज्वलन लोभ रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं संज्वलन लोभ रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।४८।। ओं ह्रीं हास्य कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं हास्य कर्म रहित सिद्धों के लिये

नमस्कार हो)।।४९।। ओं ह्रीं रति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं रति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५०।। ओं ह्रीं अरतिकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अरति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५१।। ओं ह्रीं शोक कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं शोक कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५२।।ओं ह्रीं भय कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं भय कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५३।। ओं ह्रीं जुगुप्सा कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं जुगुप्सा कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५४।। ओं ह्रीं स्त्रीवेद कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं स्त्रीवेद कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५५।। ओं ह्रीं पुरुषवेद कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं पुरुषवेद कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५६।। ओं ह्रीं नपुंसकवेद कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नपुंसकवेद कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५७।।

ओं ह्रीं आयु कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आयु कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५८।। ओं ह्रीं नरकायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नरकायु कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।५९।। ओं ह्रीं तिर्यंचायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तिर्यंचायु कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६०।। ओं ह्रीं मनुष्यायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मनुष्यायु कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६१।। ओं ह्रीं देवायुः कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं देवायु कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६२।।

ओं ह्रीं नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६३।। ओं ह्रीं नरकगति कर्म रहिताय

सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नरकगति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६४।। ओं ह्रीं तिर्यंचगति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तिर्यंचगति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६५।। ओं ह्रीं मनुष्यगति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मनुष्यगति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६६।। ओं ह्रीं देवगति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं देवगति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६७।। ओं ह्रीं एकेन्द्रिय जाति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं एकेन्द्रिय जाति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६८।। ओं ह्रीं द्विन्द्रिय जाति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं द्विन्द्रिय जाति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।६९।। ओं ह्रीं त्रिन्द्रिय जाति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं त्रिन्द्रिय जाति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७०।। ओं ह्रीं चतुरिन्द्रिय जाति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं चतुरिन्द्रिय जाति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७१।। ओं ह्रीं पंचेन्द्रिय जाति कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं पंचेन्द्रिय जाति कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७२।।

ओं ह्रीं औदारिक शरीर नाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं औदारिक शरीर नाम कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७३।। ओं ह्रीं वैक्रियिक शरीर नाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वैक्रियिक शरीर नाम कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७४।। ओं ह्रीं आहारक शरीर नाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आहारक शरीर नाम कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७५।। ओं ह्रीं तैजस शरीर नाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तैजस शरीर नाम कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७६।। ओं ह्रीं कार्मण पिण्डछेदकाय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं

पिण्डकाछेद कहने वाले सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७७।। ओं ह्रीं औदारिकबंधन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं औदारिक बंधन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७८।। ओं ह्रीं वैक्रियिक बंधन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वैक्रियिक बंधन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।७९।। ओं ह्रीं आहारक बंधन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आहारक बंधन कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८०।। ओं ह्रीं तैजस बंधन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तैजस बंधन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८१।। ओं ह्रीं कार्मणबंधन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कार्मणबंधन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८२।।

ओं ह्रीं औदारिकसंघात रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं औदारिकसंघात रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८३।। ओं ह्रीं वैक्रियिकसंघात रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वैक्रियिक संघात रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८४।। ओं ह्रीं आहारकसंघात रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आहारकसंघात रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८५।। ओं ह्रीं तैजससंघात रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तैजस संघात रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८६।। ओं ह्रीं कार्मणसंघात रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कार्मणसंघात रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८७।।

ओं ह्रीं समचतुरस्त्रसंस्थान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं समचतुरस्त्रसंस्थान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८८।। ओं ह्रीं न्यग्रोध परिमण्डलसंस्थान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।८९।। ओं ह्रीं वाल्मीकाकृतिसंस्थान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वामीके आकारवाले स्वाति संस्थान से रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।

।।९०।। ओं ह्रीं कुब्जकासंस्थान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कुब्जक संस्थान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९१।। ओं ह्रीं वामन संस्थान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वामन संस्थान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९२।। ओं ह्रीं हुण्डक संस्थान रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं हुण्डक संस्थान रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९३।

ओं ह्रीं औदारिक आंगोपांग रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं औदारिक आंगोपांग रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९४।। ओं ह्रीं वैक्रियिक आंगोपांग रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वैक्रियिक आंगोपांग रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९५।। ओं ह्रीं आहारक आंगोपांग रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आहारक आंगोपांग रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९६।।

ओं ह्रीं वज्रर्षभनाराचसंहनन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वज्रर्षभनाराच संहनन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९७।। ओं ह्रीं वज्रनाराच संहनन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वज्रनाराच संहनन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९८।। ओं ह्रीं नाराच संहनन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नाराच संहनन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।९९।। ओं ह्रीं अर्धनाराच संहनन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अर्धनाराच संहनन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१००।। ओं ह्रीं कीलकसंहनन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कीलक संहनन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०१।। ओं ह्रीं असमप्राप्त सृपाटिकासंहनन रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं असंप्राप्त सृपाटिका संहनन रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०२।।

ओं ह्रीं श्वेतानामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं श्वेतानामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०३।। ओं ह्रीं पीतनामकर्म

रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं पीत नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०४।। ओं ह्रीं हरितनाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं हरित नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०५।। ओं ह्रीं कृष्ण नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कृष्ण नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०६।। ओं ह्रीं अरुणनामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अरुण नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०७।। ओं ह्रीं सुगंधनाम कर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सुगंध नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०८।। ओं ह्रीं दुर्गंधनामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं दुर्गंध नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१०९।। ओं ह्रीं तिक्तरसनामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तिक्तरस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११०।। ओं ह्रीं कटुकरस नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कटुकरस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१११।। ओं ह्रीं कषायरस नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कषायरस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११२।। ओं ह्रीं आम्लरस नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आम्लरस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११३।। ओं ह्रीं मधुरस नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मधुरस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११४।।

ओं ह्रीं मृदुस्पर्शनामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मृदुस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११५।। ओं ह्रीं कर्कशस्पर्श नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं कर्कशस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११६।। ओं ह्रीं गुरुस्पर्श नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं गुरुस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११७।। ओं ह्रीं लघुस्पर्श नामकर्म रहिताय

सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं लघुस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११८।। ओं ह्रीं शीतस्पर्श नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं शीतस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।११९।। ओं ह्रीं उष्णस्पर्श नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं उष्णस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२०।। ओं ह्रीं स्निग्ध-स्पर्श नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं स्निग्धस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२१।। ओं ह्रीं रूक्षस्पर्श नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं रूक्षस्पर्श नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२२।।

ओं ह्रीं नरकागत्यानुपूर्वी रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नरकगत्यानुपूर्वी रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२३।। ओं ह्रीं तिर्थग्गत्यानुपूर्वी रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तिर्थग्गत्यानुपूर्वी रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२४।। ओं ह्रीं मनुष्यगत्यानुपूर्वी रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं मनुष्यगत्यानुपूर्वी रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२५।। ओं ह्रीं देवगत्यानुपूर्वी रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं देवगत्यानुपूर्वी रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।। ।।१२६।।

ओं ह्रीं अगुरुलघुनामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अगुरुलघु नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२७।। ओं ह्रीं उपघात नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं उपघात नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२८।। ओं ह्रीं परघात नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं परघात नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१२९।। ओं ह्रीं आतप नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आतप नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३०।। ओं ह्रीं उद्योत नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं उद्योत नामकर्म

रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३१।। ओं ह्रीं श्वासोच्छ्वरस नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं श्वासोच्छ्वरस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३२।। ओं ह्रीं प्रशस्त विहायोगति नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रशस्त विहायोगति नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३३।। ओं ह्रीं अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अप्रशस्त नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३४।।

ओं ह्रीं त्रस नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं त्रस नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३५।। ओं ह्रीं स्थावर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं स्थावर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३६।। ओं ह्रीं बादर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं बादर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३७।। ओं ह्रीं सूक्ष्म नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सूक्ष्मनामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३८।। ओं ह्रीं पर्याप्त नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं पर्याप्त नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१३९।। ओं ह्रीं अपर्याप्त नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अपर्याप्त नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४०।। ओं ह्रीं प्रत्येकशरीर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं प्रत्येकशरीर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४१।। ओं ह्रीं साधारण शरीर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं साधारण शरीर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४२।। ओं ह्रीं स्थिर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं स्थिर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४३।। ओं ह्रीं अस्थिरनामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अस्थिर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४४।। ओं ह्रीं शुभ नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः

(ओं ह्रीं शुभ नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४५।। ओं ह्रीं अशुभ नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अशुभ नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४६।। ओं ह्रीं सुभग नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सुभग नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४७।। ओं ह्रीं दुर्भग नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं दुर्भग नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४८।। ओं ह्रीं सुस्वर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं सुस्वर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१४९।। ओं ह्रीं दुस्वर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं दुस्वर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५०।। ओं ह्रीं आदेय नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं आदेय नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५१।। ओं ह्रीं अनादेय नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अनादेय नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५२।। ओं ह्रीं यशःकीर्ति नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं यशःकीर्ति नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५३।। ओं ह्रीं अपयशुःकीर्ति नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अपयशःकीर्ति नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५४।। ओं ह्रीं निर्म्माण नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं निर्माण रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५५।। ओं ह्रीं तीर्थंकर नामकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं तीर्थंकर नामकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५६।।

ओं ह्रीं गोत्रकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं गोत्रकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५७।। ओं ह्रीं उच्चैःगोचर रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं उच्चगोत्र रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५८।। ओं ह्रीं नीचैःगोत्र रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं नीचगोत्र

रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१५९।।

ओं ह्रीं अंतरायकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं अंतराय कर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१६०।। ओं ह्रीं दानान्तरायकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं दानान्तरायकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१६१।। ओं ह्रीं लाभान्तरायकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं लाभान्तरायकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१६२। ओं ह्रीं भोगान्तरायकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं भोगान्तरायकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१६३।। ओं ह्रीं उपभोगान्तरायकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं उपभोगान्तरायकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१६४।। ओं ह्रीं वीर्यान्तरायकर्म रहिताय सिद्धाय नमः (ओं ह्रीं वीर्यान्तरायकर्म रहित सिद्धों के लिये नमस्कार हो)।।१६५।।

## अथ जयमाल

त्रैलोक्येश्वर वंदनीय चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वती
यानाराध्य निरुद्धचण्डमनसः सन्तोऽपितीर्थंक्डराः।
सत्सम्यक्वविबोधवीर्य विशदाव्याबाधातघैर्गुणैः
युक्तास्तांनिह लोष्टवीमि सततं सिद्धान विशुद्धोदयान्।।

तीन लोक के इन्द्र जिनके चरणों की वंदना करते हैं वे तीर्थंकर सत्पुरुष भी एकाग्र चित्त होकर जिनकी आराधना कर शाश्वत (मोक्ष) लक्ष्मी को प्राप्त हुए, जो क्षायिक सम्यक्त्व, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य और विशद अव्याबाध आदि गुणों के धारी हैं उन विशुद्ध उदय स्वरूप सिद्धों की मैं सदा स्तुति करता हूँ।।१।।

विराग सनातन शांत निरंश निरामय निर्मल हंस।
सुधाम विबोध-निधान विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।२।।

हे वीतराग, सनातन, शांत, अखंड, निरोग, निर्भय, निर्मल, श्रेष्ठ, उत्तम आधारस्वरूप, सम्यग्ज्ञान के भण्डार और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! हम पर प्रसन्न हों।।२।।

विदुरितसंसृति भाव निरंग, साममृतपूरित देव विसंग।
अबंध कषाय-विहीन विमोह प्रसीद विशुद्ध समूह।।३।।

हे संसार संबंधी भावों को नष्ट करनेवाले, शरीररहित, समतारूपी अमृत से ओत-प्रोत, देवाधिदेव, संगरहित, बंधरहित, कषायरहित और मोहरहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।३।।

निवारितदुष्कृतकर्म विपाश, सदामल-केवल-केलिनिवास।
भवादधि-पारग शांत विमोह, प्रसीद विशुद्ध सिद्ध समूह।।४।।

हे दुष्कृत कर्मरूप पाश को नष्ट करनेवाले, सदा निर्मल केवलज्ञान रूपी केली के लिये क्रीडागृह, संसाररूपी समुद्र को पार करनेवाले शांत और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।४।।

अनंत-सुखामृत-सागर धीर, कलंक-रजो-मल-भूरी-समीर।
विखण्डत-काम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।५।।

हे अनंत सुखरूपी अमृत के समुद्र, धीर, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म को उड़ाने के लिये प्रचण्ड वायु स्वरूप, काम को नष्ट करनेवाले, अपने स्वरूप में विशेष रूप से रमण करनेवाले और मोहरहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।५।।

विकार-विवर्जित तर्जित-शोक, विबोध-सुनेत्र-विलोकित-लोक।
विहार विराव विरंग विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।६।।

हे विकाररहित शोक को तर्जित करनेवाले, केवलज्ञानरूपी उत्तम

नेत्र से तीन लोक को देखने वाले आत्मस्वरूप में विहार करने वाले, शब्दरहित, वर्णरहित और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।६।।

रजोमल-खेद-विमुक्त विगात्र, निरंतर नित्य सुखमृत-पात्र।
सुदर्शन-राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।७।

हे द्रव्यकर्म और भावकर्म जनित खेद से रहित, अशरीरी, निरंतर नित्य सुखरूपी अमृत के पात्र, उत्तम सम्यक्त्व से सुशोभित, सबके स्वामी और मोहरहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।७।।

नरामर-वन्दित निर्मल-भाव, अनंत-मुनीश्वर-पूज्य विहाव।
सदोदय विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।।८।

हे मनुष्यों और देवों द्वारा वन्दित निर्मल स्वभाव वाले, अनंत मुनीश्वरों द्वारा पूजे जानेवाले, हाव-भाव आदि विकारों से रहित सदा उदयस्वरूप अपने ज्ञानस्वभाव द्वारा विश्व को व्यापनेवाले, महेश और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।८।।

विदम्भ वितृष्ण विनिद्र, परापर शंकर सार वितन्द्र।
विकोप विरूप विशंक विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।९।

हे दम्भ रहित, तृष्णारहित, दोषरहित, निद्रारहित, सर्वोत्कृष्ट, सुख देने वाले, सारस्वरूप, तन्द्रारहित, कोपराहित रूपरहित, शंकारहित और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।९।।

जरा-मरणोज्झित वीत-विहार, विचिन्तित निर्मल निरहंकार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।१०।

है जरा और मरण से रहित, गमनागमन रहित ध्यानगम्य, मलरहित, अहंकाररहित, अचिंत्य चारित्रसम्पन्न, दर्परहित और मोह-

रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।१०।।

विवर्ण विगंध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।११।

हे वर्णरहित, गंधरहित, मानरहित, लोभरहित, मायारहित, शरीररहित, शब्दरहित, लौकिकशोभारहित, आकुलतारहित, असहाय सबका हित करनेवाले और मोहरहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।११।।

असम-समयसारं चारु-चैतन्य-चिन्हं,
परपरिणति-मुक्तं पद्मनंदीन्द्र-वद्यम्।
निखिल-गुण-निकेतं सिद्ध-चक्र विशुद्ध,
स्मरति नमतियो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम।।१२।।

जो मनुष्य परद्रव्य, परभाव और पर के निमित्त से होनेवाले विभाव भावों से रहित समयसार स्वरूप, सुंदर चैतन्य चिन्होंवाले, पर-परिणति से रहित, पद्मनिंद आचार्य द्वारा वन्दनीय, समस्त गुणों के मन्दिर और विशुद्ध सिद्ध समूह का स्मरण करता है, नमस्कार करता है और स्तुति करता है वह मुक्ति का अधिकारी होता है।।१२।।

ओं ह्रीं ... महार्घ्यं निर्वपामीती स्वाहा ।

इति जयमाला।

# ३
# कर्ता - कर्म विचार

'काय-वाङ्-मनः कर्म योगः।' काय वचन और मन इन तीनों की अपने-अपने परिणाम के प्रति जो एकता-तन्मयता है वही कर्म है। जिस प्रकार कुम्भकार व्यवहार से घटकर्म का कर्ता कहा जाता है, परन्तु वह वास्तव में घट, मिट्टी और चक्रादिक से तन्मय होकर घटकर्म नहीं करता है। यदि तन्मय होकर करे तो कुम्भकार घट मिट्टी और चक्रादिक में कभी भी भेद सम्भव नहीं होगा। उसी प्रकार जीव कर्ता हो और ज्ञानावरणादि पुद्‌गल कर्म इन दोनों में परस्पर अत्यंत भेद है। जो कर्ता है वह करता है और जो कर्म है वह कर्म है। वास्तव में जीव कर्ता हो और ज्ञानावरणादि पुद्‌गल कर्म उसका कर्म हो यह नहीं बन सकता। कर्ता, कर्म और क्रिया को जो जानता-देखता है वह ज्ञान है। जो ज्ञान है वही सबका साक्षीभूत है ज्ञान अन्य सबको जानता है, परन्तु उन सबसे तन्मय होकर नहीं जानता। ऐसी जो ज्ञान वस्तु है वही मैं मूल से हूँ।

मैं (ज्ञानावरणादि और रागादि) कर्म नहीं, उनका कर्ता मैं नहीं। कर्म का बंध-अबंध है वह कर्म ही है। कर्म से बँधा है और कर्म से नहीं बँधा है, इन दो का जो आदि है वह मैं नहीं, इन दो का जो मध्य है वह मैं नहीं और इन दो का जो अंत है वह मैं नहीं। तथा कर्म से बँधा है और कर्म से नहीं बँधा है वह मैं

नहीं। बाकी जो कोई है वही मैं हूँ।

जो लोक-अलोक है वह मैं नहीं। तथा लोक-अलोक में यथासंभव जो कुछ जीव-अजीव, ज्ञान-अज्ञान और आकार-निराकार आदिक है वह भी मैं नहीं। तथा लोक-अलोक के आदि-मध्य-अंत कोई है वह भी 'मैं' नहीं। तथा 'मैं' के आदि-मध्य-अंत है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई है वही मैं हूँ।

जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नौं हैं वह भी मैं नहीं। इन नौ के जो कोई आदि है वह भी मैं नहीं। इन नौ के जो कोई मध्य है वह भी मैं नहीं तथा इन नौ के जो कोई अन्त है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

तू, मैं, यह वह - ये चार हैं, वह भी मैं नहीं तथा इन चार के जो कोई आदि है वह भी मैं नहीं इन चार के जो कोई मध्य है वह भी मैं नहीं तथा इन चार का जो कोई अंत है वह भी मैं नही। बाकी जो कोई है वही मैं हूँ। श्वासोच्छ्व्वास है वह भी मैं नहीं। श्वासोच्छ्वासके आदि-मध्य-अंत जो कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी जो कोई है वही मैं हूँ।

शून्य-अशून्य कोई है वह भी मैं नहीं। शून्य-अशून्य के आदि-मध्य-अंत जो कोई है वह भी मैं नही। बाकी जो कोई है वही मैं हूँ।

जिसका विधि-निषेध हो सकता है और जिसका विधि-निषेध नहीं हो सकता है, इन दो के आदि-मध्य-अंत जो कोई है वह भी मैं नहीं। तथा विधि-निषेध भी मैं नहीं। बाकी जो नाम वचन का साधन है। स्वानुभव सम्यग्ज्ञान द्वारा अपने स्वस्वरूप का तन-मन-धन-वचनादिक से सर्वथा प्रकार मूल से ही भिन्न रूप से अनुभव

करना यह सबसे अलग बाकी नाम-वचन का साधन है इस प्रकार बाकी जो कोई है वही मैं हूँ।

जीव-अजीव के आदि-अन्त-मध्य जो कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी जो कोई है वही मैं हूँ।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्तःकरण, रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण है वह भी मैं नहीं। तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अन्तःकरण, रजोगण, तमोगुण और सत्त्वगुण के आदि-अन्त-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

चार वेद, अठारह पुराण हैं, वह भी मैं नहीं। चार वेद और अठारह पुराणों में जिसकी कथनी-लिखावट है वह भी मैं नहीं। चार वेद और अठारह पुराणों की रचना करनेवाला - वह भी मैं नहीं। इन चार वेद और अठारह पुराणों के आदि-मध्य-अंत कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

ये वेद-पुराण-शास्त्र हैं वह ज्ञान नहीं, अज्ञान हैं, शब्द संग्रह है, पुद्गल की पर्याय है, इसलिए शब्द-आकार (शब्दों की स्थापना) जड़-चेतन-अज्ञान है। इन्हें जो अवकाश देता है वह आकाश है। आकाश अमूर्तिक-निराकार है। परन्तु ज्ञान गुण आकाश से तन्मय नहीं, अतः आकाश भी अज्ञान है जड़-अजीव-अचेतन है। जीवनाम, अजीवनाम, ब्रह्मनाम, अब्रह्मनाम आत्मनाम, अनात्मानाम-सिद्धनाम अज्ञाननाम इत्यादि जितने भी सब नाम-अनाम है वह भी मैं नहीं। तथा इन सब नाम-अनाम हैं वह भी मैं नही। तथा इन सब नाम-अनाम के आदि-अन्त-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ।

रूप-अरूप है वह भी मैं नहीं। तथा रूप-अरूप के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई भी है वही मैं हूँ।

रूपी तो पुद्गल है तथा अरूपी धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य हैं।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, ग्यारह अंग और चौदह पूर्व हैं वही भी मैं नहीं। इन प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, ग्यारह अंग और चौदह पूर्व में जिसकी कथनी-लिखावट है वह भी मैं नहीं। इन प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, ग्यारह अंग और चौदह पूर्वका जो रचनेवाला है वह भी मैं नहीं। तथा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

जिसको जाननेवाला भी नहीं जानता, जिसको अजानकार भी नहीं जानता, और जिसको ज्ञानी-अज्ञानी भी नहीं जानता, किन्तु जो ज्ञानी-अज्ञानी सबको जानता है ऐसा कोई है वही मैं हूँ।

कहने में आता है और कहने में नहीं आता है ऐसा कोई है वह भी मैं नहीं। तथा कहने में आता है और कहने में नहीं आता है ऐसा जो है, उसके आदि-अंत-मध्य जो कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

पाँच प्रकार निद्रा, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या अवस्था यह है वह भी मैं नहीं तथा पाँच प्रकार निद्रा, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या अवस्था इसके आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

काल, धर्म, अधर्म और आकाश है वह भी मैं नहीं तथा काल, धर्म, अधर्म और आकाश के आदि-अंत-मध्य कोई है, वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य पाप है,

वह मैं नहीं। तथा जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य पाप इनके आदि-अंत-मध्य, कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई है वही मैं हूँ।

लोक-अलोक, योग, युक्ति, जगत है वह भी मैं नहीं तथा लोक-अलोक, योग, युक्ति, जगत के भीतरं सूर्य, चंद्र तारागण, मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारकी नाम, धाम, ग्राम, याम काम इत्यादि जन्म, जरा, मरण पर्यन्त जितनी रचना है वह भी मैं नहीं। तथा लोक-अलोक, योग, युक्ति, जगत के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ, वही मैं हूँ।

अनन्तज्ञान स्वरूपोऽहम् चिद्रूपोऽहम् अनन्तदर्शनस्वरूपोऽहम् अनन्तवीर्यस्वरूपोऽहम्, अनन्तसौख्योऽहम्, स्वयंसिद्धोऽहम्, बुद्धोऽहम्, अनन्तज्ञानगुण- समृद्धोऽहम्, देहप्रमाणोऽहम् सदाकालनित्योःहम्, अप्रसंख्योऽहम् अप्रदेशोःहम्, अमूर्तोऽहम् परमानन्दोऽहम्, सहजानन्दोऽहम् सहजसिद्धोऽहम् चिदानन्दोऽहम्, निसकारोऽहम्, निराधारोऽहम्, निराहारोऽहम्, निराबाधोऽहम्, ज्ञानपिण्डोऽहम् ज्ञानमूर्तोहम्, शान्तोंहम्, निरज्जनोऽहम्, उदासीनोःहम्, निर्विकल्पोऽहम्, टक्ड़ोत्कीर्णोहम्, लोकालोकप्रकाशकेऽहम्, राग-द्वेष-मोहरहितोऽहम्, कषायरहितोऽहम्, निरंकारोहम्, क्रोध-मान-माया-लोभरहितोऽहम्, चैतन्योऽहम्, सहजनिर्मलोऽहम्, अद्धसानन्दोऽहम्, एकोःहम्, त्रिलोकेशोऽहम्, निर्देहोऽहम्, निरिन्द्रियोऽहम्, निर्भेदोऽहम्, सप्तभयविमुक्तोऽहम्, पंच्चप्रकारसंसारएष्टकर्मरहितोऽहम्, मनःबुद्धि-चित्त-अहंकार-अन्तःकरणरहितोःहम्, स्वसंवेद्योःहम्, द्रव्यकर्मभावकर्म रहितोःहम्, औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कर्मण पच्चशरीररहितोःहम्।

'सोहम्' से अलग कोई है वह भी मैं नहीं तथा 'सोहम्' वह भी मैं नहीं। 'सोहम्' और 'न सोहम्' ये दो हैं। इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

समता रमता ऊर्ध्वता ज्ञायकता सुखभास।
वेदकता चैतन्यता यह सब जीव विलास।।

मोह-क्षोभ से रहितपना, निज स्वभाव मे तीनता, ऊर्ध्वगमन स्वभाव, ज्ञायकता, सुखरूपता, वेदकता और चेतनता यह सब जीव का विलास है।

तनता मनता वचनता जड़ता जड़से मेल।
लघुता गुरुता गमनता यह अजीवका खेल।।

शरीर, मन और वचनरूप अवस्था, जड़पना, जड़ से मिलता (बिछुड़ना) हलकापन, भारीपन और गमन क्रिया यह सब अजीव-पुद्गल की अवस्थाएँ हैं।

यह सब हमारा विलास खेल नहीं है, नहीं है, नहीं है, जीव अजीव का खेल है। यहाँ जीव-अजीव, सोऽहम्-न सोऽहम् तथा तन-मन-धन-वचनादिक से जो अपने स्वरूप का सर्वथा प्रकार भिन्न रूप से मनन-अनुभवन करता है वह मुमुक्षु धन्य है, धन्य है।

# ४
# स्वस्वरूप मनन

**अथ स्वस्वरूप विचार मन लिखते हैं :-**

**दोहा**

अजीव से जो अलग है, जीव जीव सो सार।
सो ही सोऽहम् हूँ सदा निश्चय कर निरधार।।

जिस प्रकार अग्नि में उष्णता है उसी प्रकार जिस वस्तु में ज्ञान गुण तन्मयी है उसी वस्तु का नाम जीव है।

**प्रश्न - तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - मैं जीव हूँ।

**प्रश्न - तुम एक ही जीव हो या कोई और भी जीव है ?**

**उत्तर** - जीव राशि जाति की अपेक्षा एक ही है, परन्तु इसमें भेद है।

**प्रश्न - क्या भेद है ?**

**उत्तर** - बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ये तीन भेद हैं।

**प्रश्न - बहिरात्मा कौन है ?**

**समाधान** - जो जीव तन-मन-धनादिक अजीव को और आपको अग्नि-उष्णतावत् एक स्वरूप जानता-मानता है वह जीव बहिरात्मा है।

**प्रश्न - अंतरात्मा कौन है ?**

**समाधान** - जो जीव तन-मन-धनादिक अजीव को और आपको

अग्नि-उष्णतावत् एक स्वरूप न जानता है और न मानता है। अर्थात् अजीव और आप में अंधकार और प्रकाश के समान अंतर-भेद जानता है और मानता है वह अंतरात्मा है।

**प्रश्न - परमात्मा कौन है ?**

**समाधान** - परमात्मा अनुभव-ज्ञानगम्य है वचन से कहने में नहीं आता, परन्तु कुछ कहता हूँ। जिसे अनुभव लेना है वह सुनकर मन में विचार कर अनुभव लेवे। जो जीव-अजीव, ज्ञान-अज्ञान, चेतन-अचेतन, आकार-निराकार, मूर्ति-अमूर्ति, नाम-अनाम, रूप-अरूप, वर्ण-अवर्ण, लोक-अलोक, युक्ति, जगत्, तन-मन-धन-वचन, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-अंतःकरण, विद्या-अविद्या, विधि-निषेध, शून्य-अशून्य, द्वैत-अद्वैत, बंध-मोक्ष और तू-मैं-यह-वह इत्यादि से मूल ही से अलग है वही परमात्मा है। शंका - वह जब नाम-अनाम से भी अलग है तब उसका नाम परमात्मा भी नहीं हो सकता ?

**उत्तर** - यह पहले ही लिख आया हूँ कि वह अनुभव-ज्ञानगम्य है।

**प्रश्न - अच्छा, मैं इस बात को भूल गया। किन्तु यह तो बतलाइए कि आप कौन हैं ?**

**उत्तर** - मैं अजीव तो जड़ मूल से ही नहीं। अब मैं जितना अजीव है और अजीव का खेल है उसका वर्णन करता हूँ। मुझे अजीव नहीं जानना, नहीं मानना। तू, मुझे अजीव से अलग जानना-मानना। जिस प्रकार तू सूर्य से अंधकार को अलग जानता है-मानता है उसी प्रकार तू मुझसे अजीव को अलग जानना-मानना।

**प्रश्न - मुझे भी यही निश्चय है कि आप अजीव तो नहीं हो। अब आप अजीव का वर्णन करो। मैं आपको अजीव से अलग ही जानूँगा।**

**उत्तर** - सुन, नाटक समयसार में कहा है -

तनता मनता वचनता, जड़ता जड़ से मेल।
लघुतागुरुता गमनता, यह अजीव का खेल।।

यह सब खेल अजीव का है, मेरा नहीं। जिस प्रकार सूर्य से अंधकार है उसी प्रकार मुझसे अजीव और अजीव का खेल अलग है। और सुनो, पद्मनंदी पंचविंशतिका में कहा है -

किं लोकेन कियाश्रयेण किमथ द्रव्येण कायेन किम्।
किं वाग्मी किमुतेन्द्रिये किमशुभिः किं तैः विकल्पैरपि।।

लोक से क्या लाभ, आश्रय भी किस काम का, द्रव्य से भी क्या प्रयोजन और शरीर से भी क्या लाभ। वाग्मी होना किस काम का, इन्द्रिय भी किस प्रयोजन की। अशुभ और शुभ विकल्पों से क्या लाभ ?

यहाँ लोक से लेकर विकल्प पर्यन्त सब पुद्गल की पर्याय हैं। सो वे सब अजीव की ही हैं, क्योंकि जो पुद्गल है वह अजीव ही है, इसलिए उसकी पर्याये भी अजीव ही हैं। अतः मैं अजीव तो जड़-मूल से ही नहीं। और सुनो, नाटक समयसार में कहा है -

सद्गुरु कहें भव्य जीवनि सौ, तोरहु तुरित मोह की जेल।
समकित रूप गहौ आपनौं गुन, करहु शुद्ध अनुभवकौ खेल।।
पुद्गलपिंड भाव रागादिक, इनसौं नहीं तुम्हारौ मेल।
एजड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसैं भिन्न तोय अरु तेल।।१२।।

श्री सद्गुरु भव्य जीवों से कहते हैं कि तुम मोहरूपी जेल में पड़े हो, उसे अति शीघ्र तोड़ डालो और स्व-पर भेदविज्ञान स्वरूप अपने सम्यक्त्व गुण को ग्रहण कर रागादि परभावों से भिन्न अपने शुद्ध अनुभव में क्रीड़ा करो। पुद्गलपिंड और रागादि भावों से तुम्हारा कोई मेल नहीं हैं। ये प्रकट रूप में जड़-अचेतन हैं और तुम चेतन हो जो इन्द्रिय-मन के अगोचर है। जिस प्रकार पानी और तेल भिन्न-

भिन्न है उसी प्रकार तुम भी जड़ से अत्यंत भिन्न हो।।१२।।

ये पुद्गलपिंड भाव रागादिक भी अचेतन-जड़-अजीव ही हैं और मैं मूल से ही जड़-अजीव नहीं हूँ। इन पुद्गलपिंड भाव रागादिक का और मेरा अग्नि-उष्णता के समान मेल नहीं है। किन्तु इन अजीव पुद्गलपिंड और भाव रागादिक से मुझे सूर्य और अंधकार के समान अंतर है।

**प्रश्न - तो तुम कौन हो ?**

**उत्तर -** मैं पहले से ही कहता आ रहा हूँ कि मैं अजीव तो जड़-मूल से ही नहीं हूँ।

**प्रश्न - तो तुम जीव किस प्रकार हो सो कहो ?**

**उत्तर -** सुनो, कहता हूँ। श्री कुंदकुंद आचार्य देव ने समयसार में कहा है -

अरसमरुवमगंधं अव्वतं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमिणिद्दिठ्टसंठाणं।।४९।।

हे भव्यजीव ! तू जीव को रसरहित, रूपरहित, गंधरहित, अव्यक्त अर्थात् इन्द्रिय-मन के अगोचर, चेतना, गुणवाला, शब्दरहित, किसी चिह्न से ग्रहण न होनेवाला अर्थात् अनुमान का अविषय है और निर्दिष्ट आकार से रहित जानो।।४९।।

जीव रसरहित, रूपरहित और गंधरहित है, क्योंकि ये रस, रूप और गंध चेतन-अजीव हैं और जीव चैतन्य गुणसंयुक्त है। जिस प्रकार सूर्य प्रकाशगुण संयुक्त है उसी प्रकार जीव चैतन्य गुण संयुक्त है। तथा जीव अलिंगग्रहण अर्थात् स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीन लिंगो से रहित है, क्योंकि स्त्री, पुरुष और नपुंसकरूप जो पुद्गलपिंड का आकार दिखलाई देता है वह भी अजीव है। आचार्य गृद्धपिच्छने तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है -'रूपिणः पुद्गलाः।'

जितने रूपी पदार्थ हैं वे सब पुद्गल हैं। अतः स्त्री, पुरुष और नपुंसक लिंग रूप जो आकार दिखलाई देता है वह भी पुद्गलपिंड-अजीव है। जीव तो रूप, रस, गंध, वर्ण तथा स्त्री, पुरुष और नपुंसक लिंगरहित है। और सुनो, श्री कुंदकुंद आचार्यदेव समयसार में कहते हैं :-

जीवस्स णत्थि वण्णों ण विगंधो णविरसो णविय फासो।
ण वि रूवं ण सरीरंण वि संठणं ण संहणण।।५०।।
जीवस्तस णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्पि।।५१।।
जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्डया केई।
णो अज्झप्पठ्टाणा णेव य अणुभागठाणाणि।।५२।।
जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधट्ठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई।।५३।।
णो ट्ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स णसंकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलन्द्धिठाणा वा।।५४।।
णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पोग्गल दव्वस्य परिणामा।।५५।।

जीव के वर्ण रंग-रूप नहीं, जीव के सुगंध-दुर्गंध भी नहीं। जीव सुगंध-दुर्गंध से इस प्रकार अलग है जिस प्रकार अंधकार से सूर्य अलग है। जीव के खट्टा, मीठा, कडुआ, कपायला और चरपरा रस भी नहीं, जीव के हलका, भारी, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना, नरम और कठोर स्पर्श भी नहीं जीव के स्पर्श आदि सामान्य परिणाममात्र रूप भी नहीं, शरीर भी नहीं, संस्थान भी नहीं, संहनन भी नहीं।।५०।। जीव के राग नहीं, द्वेष भी नहीं, मोह भी विद्यमान

नहीं, प्रत्यय भी नहीं, कर्म भी नहीं और नोकर्म भी उसमें नहीं है।।५१।। जीव के वर्ग नहीं वर्गणा नहीं, कोई स्पर्धक भी नहीं अध्यात्मस्थान भी नहीं और अनुभागस्थान भी नहीं हैं।।५२।। जीव के कोई योगस्थान नहीं बंधस्थान नहीं, उदयस्थान नहीं और कोई मार्गणास्थान भी नहीं हैं।।५३।। जीव के स्थिति बंधस्थान नहीं संक्लेशस्थान नहीं, विशुद्धिस्थान नहीं और संयमलब्धिस्थान भी नहीं हैं।।५४।। जीव के जीवस्थान नहीं और गुणस्थान भी नहीं हैं, क्योंकि ये सब पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं, इसलिये ये सब अजीव ही हैं।।५५।।

जो अजीव और जीव का अग्नि-उष्णता के समान मेल मानता है-जानता है वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। तथा जो इनमें और जीव में सूर्य और अंधकार के समान अंतर मानता-जानता है वह अंतरात्मा सम्यग्दृष्टि है।

और सुनो, आचार्य गृद्धपिच्छ (उमा स्वामी) रचित तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है :-

जीवाजीवास्रव बंध संवर निर्जरा **मोक्षास्तत्तव**

**अर्थ :-** जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष में सात तत्त्व हैं।।४।।

उन सात तत्त्वों में प्रथम जीव तत्त्व है सो वह तो जीव ही है। बाकी छह हैं सो अजीव हैं। इन छह अजीव में और जीव में जो सूर्य और अंधकार के समान अंतर, भेद मानता है-जानता है वह सम्यग्दृष्टि-अंतरात्मा है।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नौ पदार्थ हैं। उनमें प्रथम जीवो है, वह तो जीव ही है। बाकी आठ हैं वे अजीव हैं।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। उनमें प्रथम जीव हैं, वह तो जीव ही है बाकी पाँच हैं, वे अजीव हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है - 'अजीवकाया धर्माधर्मा काशपुद्गला। ' इस प्रकार इस सूत्रमें जो चार द्रव्य परिगणित किये गये हैं वे अजीव-काय है सो अजीव ही हैं।

'रूपिणः पुद्गलः' लोक में जितना रूप दिखलाई देता है वह सब पुद्गल है, सो पुद्गल भी अजीव ही है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है - 'स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः पुद्गलाः' अर्थात् जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये चार गुण पाये जाते हैं वह पुद्गल है।

और सुनो, शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत ये पुद्गल की दश पर्यायें हैं सो ये भी अजीव हैं। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अंतःकरण, क्रोध, मान, माया और लोभ ये भी अजीव हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच शरीर हैं, सो ये भी अजीव हैं। निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच प्रकार की निद्रा हैं, सो ये भी अजीव हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय ये आठ कर्म हैं, सो ये भी अजीव हैं। तथा इन आठ कर्मों की १४८ प्रकृतियाँ हैं, सो ये भी अजीव हैं।

और सुनो, पद्मनन्दि पंचविंशतिका में कहा है -

नामापि हि परं तस्मान्निश्चयत्त, दनामकम्।
जन्ममृव्यादि चाशेषं वपुर्धर्म विदुर्वुधाः।।

(प. पं. एकत्व सप्तति श्लोक ३६)

जन्म, मरण, नामादिक शरीर के धर्म हैं और शरीर अजीव है। शरीर अजीव है तो जितना शरीर का धर्म है वह भी अजीव है, सो मैं अजीव नहीं, नहीं, नहीं। जन्म, मरण, नाम भी मेरा नहीं, अजीव का ही है। मेरा नाम जीव भी नहीं और मेरा नाम अजीव भी नहीं। तन, मन, धन, वचन भी अजीव हैं। जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या और अधिकार ये आठ मद हैं, सो ये भी अजीव हैं।

अठारह दोषरहित देव है। वह एक जीव है, सो तो जीव ही है, वही देव है। बाकी जो अठारह दोष हैं, सो वे अजीव हैं। साढ़े सैंतीस हजार जो प्रमाद के भेद हैं, सो वे भी अजीव हैं। **अठारह हजार** जो कुशील के भंग हैं, सो वे भी अजीव हैं। तथा जो एकसौ आठ हिंसा के भंग हैं, सो वे भी अजीव हैं, क्योंकि ये प्रमाद, कुशील और हिंसादिक के भंग भगवान् परमात्मा सिद्ध के नहीं पाये जाते और जो भगवान् परमात्मा सिद्ध हैं वे जीव हैं। वे अजीव नहीं, नहीं, नहीं। जो जीव से पृथक् है वह अजीव है और जो अजीव से पृथक् है वह जीव है।

**प्रश्न - तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - मैं नहीं, परन्तु मैं बिना मेरी बात कौन कहे। मैं अजीव नहीं तथा जो अजीव को और आपको अग्नि-उष्णता के समान एक मानता है जानता है वह भी मैं नहीं।

**प्रश्न - तो तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - जो अजीव को और आपको सूर्य और अंधकार के समान अलग-अलग मानता है - जानता है वही मैं हूँ।

**प्रश्न - आप ऐसे कब से हो ?**

**उत्तर** - प्रारंभ से (अनादि से) ही हूँ।

**प्रश्न - निश्चय कहो, तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - कहूँगा, परन्तु तुम्हारे अंतःकरण-मनमें निश्चय नहीं हो पायेगा।

**प्रश्न - कहो तो सही, मेरे अंतःकरण मन में निश्चय नहीं हो पायेगा तो आप तो कहो तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - सुन मैं ! मनुष्य नहीं, मैं देव नहीं, मैं तिर्यंच नहीं, मैं नारकी नहीं, मैं स्त्री नहीं, मैं पुरुष नहीं, मैं नपुंसक नहीं, मैं एकेन्द्रिय नहीं, मैं द्विन्द्रिय नहीं, मैं त्रिन्द्रिय नहीं, मैं चतुरिन्द्रिय नहीं, मैं पंचेन्द्रिय नहीं, मैं ब्राह्मण नहीं, मैं वैश्य नहीं, मैं क्षत्रिय नहीं, मैं शुद्र नहीं, मैं नीच नहीं, मैं उच्च नहीं, मैं छोटा-मोटा-खोटा-खरा नहीं, मैं काला-पीला-हरा-सफेद-लाल नहीं, मैं कोई रूप-रंग नहीं, मैं रूपी-अरूपी नहीं, मैं मूति-अमूर्ति नहीं, मैं आकार-निराकार नहीं, मैं चेतन-अचेतन नहीं, मैं जीव-अजीव नहीं, मैं ज्ञान-अज्ञान नहीं, मैं आत्मा-अनात्मा नहीं, मैं शून्य-अशून्य नहीं, मैं गुप्त-प्रकट नहीं, मैं दूर-निकट नहीं मैं बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा सकल परमात्मा-निकल परमात्मा नहीं, इस जीव-आत्मा बहिरात्मा-अंतरात्मा-परमात्मा-सकल परमात्मा-निकल परमात्मा से अलग कोई है वह भी मैं नहीं, लोक-अलोक हैं वह भी मैं नहीं, तन-मन-धन-वचन है वह भी मैं नहीं, तू-मैं-यह-वह ये चार हैं वे भी मैं नहीं। बाकी कोई है स्वानुभवगम्य, वही मैं हूँ। अब और कुछ पूछना हो तो पूछो। यहाँ मैं मौन हूँ।

**प्रश्न - परमात्मा कैसा है ?**

**उत्तर** - जो अनंतज्ञान, अनंतवीर्य, अनंतदर्शन और अनंत सुखरूप निजमाब को कभी नहीं छोड़ता तथा काम, क्रोध आदि रूप परभाव को कभी ग्रहण नहीं करता, सदाकाल जागृत रहता है, किसी भी

काल में सोता नहीं, तीन काल तीन लोक के सब पदार्थों को केवलज्ञान स्वभाव से जानता है तथा जो सदाकाल नित्य, अखंड और अविनाशी स्वरूप में स्थित होकर देखता-जानता है वही निश्चय से परमात्मा है।

**प्रश्न - ऐसे परमात्मा की जानकारी तुम्हें कैसे हुई ?**

**समाधान** - मेरी काललब्धि के पाक द्वारा, गुरु के उपदेश द्वारा, तन-मन-धन-वचन द्वारा, मैं-तू-यह-वह इन चार द्वारा मेरा मेरे में यथावत् स्वरूप को लिये हुए स्वानुभव-मनन हुआ कि मैं क्या उस परमात्मा स्वरूप से सर्वथा अलग हूँ ? जैसा वह परमात्मा है वैसा ही मैं हूँ।

**प्रश्न - वह और मैं एक ऐसा बोलना ही विरुद्ध है ?**

**उत्तर** - क्या अग्नि का कण अग्नि नहीं है, अर्थात् है ही।

**प्रश्न - परमात्मा और तुझमें बड़ा अंतर है ?**

**उत्तर** - परमात्मा और मुझमें कुछ भी अंतर नहीं।

**प्रश्न - कुछ तो अंतर होगा ?**

**उत्तर** - जिस प्रकार सूर्य में और सूर्य के प्रतिबिंब में (दीपक के प्रकाश गुण की अपेक्षा) अंतर नहीं, उसी प्रकार परमात्मा और मुझमें अंतर नहीं।

**प्रश्न - अब तुम्हें क्या निश्चय हुआ ?**

**उत्तर** - मुझे यही निश्चय हुआ कि मैं अजीव तो जड़-मूल से ही नहीं। अजीव को और जीव को अग्नि और उष्णता के समान एक मानता है-जानता है ऐसा जो कोई जीव है वह भी मैं नहीं। मुझमें श्वेत, कृष्ण, रक्त, पीत और नील यह पाँच प्रकार का वर्ण नहीं। सुगंध और दुर्गंध यह दो प्रकार का गंध नहीं। मधुर अम्ल, तिक्त, कटुक और क्षार यह पाँच प्रकार का रस नहीं। भाषा और

भाषा रूप शब्द नहीं। सात प्रकार के स्वर नहीं। शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघु, मृदु, कठिन यह आठ प्रकार का स्पर्श नहीं। मेरा जन्म, जरा, मरण नहीं, मुझमें क्रोध, मोह और मद अर्थात् जाति, लाभ, कुल, रूप, तप बल, विद्या और अधिकार यह आठ प्रकार का मद भी नहीं। माया अर्थात् कपट नहीं। मान नहीं। स्थान अर्थात् ध्यान के स्थझन नाभि, हृदय और ललाट आदि नहीं। ध्यान अर्थात् चित्त का निरोध नहीं। जब मेरा चित्त ही नहीं तो निरोध किसका करूँ। द्रव्य-भावरूप पुण्य-पाप मेरे नहीं। राग, द्वेष, हर्ष, विषाद भी मेरे नहीं। क्षुधा से लेकर अठारह दोष भी मेरे नहीं। कुंभक, पूरक, रेचक और वायुधारण आदि भी मेरे नहीं। अक्षर रचना, रूपस्तंभन, मोहादिकरण यंत्र तथा नाना प्रकार के अक्षर उच्चारण रूप मंत्र भी मेरे नहीं हैं। जलमंडल, अग्निमंडल और पृथिवीमंडल आदि वायु के भेद भी मेरे नहीं हैं। मुद्रा अर्थात् गारुड़ की दिव्य ध्वनि और शास्त्र अर्थात् महामुनि के वचन उनसे भी मैं जानने में नहीं आऊंगा - ऐसा मैं हूँ क्योंकि जो वेद और शास्त्र हैं वे ज्ञान नहीं, वे शब्द रूप अर्थ हैं मैं शब्दातीत हूँ। मैं इन्द्रिय और मन से भी जानने में नहीं आता, क्योंकि मैं इन्द्रिय और मन के अगोचर हूँ। इन्द्रियों का विषय मूर्त पदार्थ है और मन विकल्परूप है और मैं निर्विकल्प अमूर्तिक हूँ, इसलिये मैं इन्द्रिय और मनगम्य नहीं। मैं मेरे ही गम्य हूँ। मैं ऐसा हूँ।

मेरे पर वस्तु का आश्रय नहीं, कोई मेरा सहायी नहीं, मैं आप ही सब तरह से परिपूर्ण हूँ। केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलसुख ही मेरा स्वभााव है। मैं अनन्तवीर्य का धारक हूँ। मेरे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच प्रकार के शरीर नहीं, इसलिये मैं निराकार हूँ। तथा मैं जीव और अजीव

को एक नहीं मानता हूँ, एक नहीं जानता हूँ। मैं पाँच इन्द्रियों द्वारा पाँच प्रकार के विषयों को जानता हूँ पर स्वयं पाँच इन्द्रियों के अगोचर हूँ।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप प्रवर्तमान जो पाँच प्रकार का संसार है वह मेरे स्वभाव-स्वरूप से अलग है। संसार का कारण रूप जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप चार प्रकार का बंध है वह भी मेरे नहीं। मैं हूँ सो मैं ही हूँ। मेरे से पर जो देहादिक है वह भिन्न ही है। मैं गोर अर्थात् श्वेत नहीं हूँ, मैं कृष्ण नहीं हूँ, मैं लाल नहीं हूँ, मैं सूक्ष्म नहीं हूँ और मैं स्थूल नहीं हूँ।

**प्रश्न - तो तुम किस रूप हो ?**

**उत्तर** - मैं ज्ञान स्वरूप हूँ।

और सुनो, मैं ब्राह्मण नहीं, मैं वैश्य नहीं, मैं क्षत्रिय नहीं, मैं शूद्र नहीं, मैं पुरुष नहीं, मैं स्त्री नहीं, मैं नपुंसक नहीं, मैं तीनों लिंगरूप नहीं।

**प्रश्न - तो तुम किस रूप हो ?**

**उत्तर** - मैं केवल ज्ञान स्वरूप हूँ।

और सुनो, मैं वेदक अर्थात् बोध करानेवाला आचार्य नहीं। मैं क्षपणक अर्थात् दिगंबर नहीं। मैं किसी मत का गुरु नहीं। मैं किसी भेष का धारक लिंगी नहीं। मैं एकदंडी, त्रिदंडी, हंस, परमहंस कोई भी नहीं। मैं संन्यासी नहीं, मैं जटाधारी भी नहीं। रुद्राक्ष की माला, तिलक, छाया आदि अनेक भेष हैं। उनमें से कोई भी भेष मेरा नहीं है। मैं गुरु नहीं, मैं शिष्य नहीं, मैं स्वामी नहीं, मैं सेवक नहीं। मैं शूरवीर नहीं, मैं कायर नहीं। मैं हीनबली नहीं, मैं बलवान नहीं। मैं उच्चकुल नहीं, मैं नीचकुल नहीं। मैं मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी नहीं। मैं किसी प्रकार का पर पुरुष नहीं। मैं पंडित

अर्थात् विद्वान नहीं, मैं मूर्ख नहीं। मैं लोकालोक नहीं। मैं दारिद्री नहीं, मैं बाल नहीं, मैं तरुण नहीं, मैं वृद्ध नहीं। मैं कृश नहीं। मैं निद्रा नहीं, मैं स्वप्न नहीं, मैं स्वप्न में जितना जाल-जंजाल दिखलाई देता है वह नहीं।

देखना जानना जैसा जागृत में होता है वैसा ही स्वप्न और सुषुप्ति में भी होता है। तन, मन, धन, वचन, तू, मैं, यह, वह, हूँ, हूँ आदि कुछ भी संकल्प-विकल्प मैं नहीं। परन्तु देखना-जानना तो वहाँ भी जैसा का तैसा है। सोये हुए को कोई जगावे तब वह जागनेवाला जागकर वचन द्वारा कहता है - बहुत अच्छी नींद आई थी, मैं बड़े आनंद में सोया था। इस प्रकार वह सुषुप्ति की बात कहता है, इसलिये समझो कि, सोते समय भी देखना-जानना जैसा का तैसा ही बना रहता है। जैसे नेत्र से देखता है वैसे ही पाँचो इन्द्रियों से देखता-जानता है, क्योंकि ज्ञान पदार्थ शरीर के भीतर सर्वांग में है। देखना, जानना और ज्ञान ये तीन नाम हैं, परन्तु ये तीन नहीं हैं, वस्तु एक ही है। जैसे अग्नि उष्णता और प्रकाश ये तीन नाम हैं। परन्तु तीन नहीं हैं, वस्तु एक ही है। वैसे ही देखना, जानना और ज्ञान ये तीन नाम हैं। परन्तु तीन हैं नहीं, वस्तु एक ही है। ज्ञान और अज्ञान इनमें जो ज्ञान है वही देखता-जानता है।

**प्रश्न - ज्ञान है सो किसको जानता-देखता है ?**

**समाधान -** लोक-अलोक को, जगत-संसार को, तुझको-मुझको, इसको-उसको, तन-मन-धन-वचन को और जितना वचन से कहने में आवे उस सबको देखता-जानता है।

**प्रश्न - ज्ञान और अज्ञान में कितना अंतर है ?**

**उत्तर -** सूर्य और अंधकार में जितना अंतर है उतना ही ज्ञान

और अज्ञान में अंतर है।

**प्रश्न - ज्ञान और अज्ञान ये दो हैं। उनमें से तुम ज्ञान हो कि अज्ञान ?**

**उत्तर** - मैं ज्ञान भी नहीं और अज्ञान भी नहीं, मैं ज्ञान हूँ परन्तु अज्ञान की अपेक्षा ज्ञान हूँ। अपेक्षारहित मैं स्वानुभवगम्य जैसा हूँ वैसा ही हूँ।

**प्रश्न - तो तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - तू तन-मन-धन-वचन को छोड़कर भले प्रकार स्वयं को देख-जान कि तू कौन है ?

यहाँ प्रश्न पूछनेवाला मानावलंबी हुआ, इसलिये उत्तर देनेवाला भी मौनावलंबी हुआ। अब पुनः प्रश्न पूछनेवाला मौन का त्याग कर पूछता है -

**प्रश्न - महाराज ! आपने मुझसे कहा कि तू तन-मन-धन-वचन को छोड़कर भले प्रकार स्वयं को देख-जान कि 'तू कौन है ?' परन्तु मुझे मेरी खबर नहीं कि 'मैं कौन हूँ।' परन्तु आप तन-मन-धन-वचन को छोड़कर बोलो कि 'आप कौन हो।'**

**उत्तर** - हम तन-मन-धन-वचन नहीं।

**प्रश्न - आप तन-मन-धन-वचन कैसे नहीं ?**

**उत्तर** - तेरा प्रश्न यह है कि 'आप तन-मन-धन-वचन कैसे नहीं ?' इसमें जिसे 'आप' ऐसा कहते हो वही मैं हूँ।

**प्रश्न - आप तन नहीं, आप मन नहीं, आप धन नहीं, आप वचन नहीं तो आप कौन हो ?**

**उत्तर** - जो तन-मन-धन-वचन है सो तो मैं जड़-मूल से ही नहीं। इस तन-मन-धन-वचन के आदि कोई है वह भी मैं नही, इस तन-मन-धन-वचन के अंत कोई है वह भी मैं नहीं और इस

तन-मन-धन-वचन के मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ।

और सुन ! जितना नाम है वह भी मैं नहीं तथा नाम का प्रतिपक्षी जितना अनाम है वह भी मैं नहीं, अर्थात् सर्वनाम है वह भी मैं नहीं। जितना रूप अरूप है वह भी मैं नहीं। जितना आकार निराकार है वह भी मैं नही। जितना मूर्ति-अमूर्ति पदार्थ है वह भी मैं नहीं। जितनी वस्तु देखने में आती है व नहीं आती है वह भी मैं नहीं। जो वस्तु वचन से कहने में आती है व वचन से कहने में नहीं आती ऐसी जो दो वस्तुएँ हैं वह भी मैं नहीं। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव है वह भी मैं नहीं और इस नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। प्रत्यक्ष प्रमाण परोक्ष प्रमाण, उपमा प्रमाण और आगम प्रमाण ये चार प्रमाण हैं, वह भी मैं नहीं तथा इन चार पाकर के प्रमाणों के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वह मैं हूँ। 'मैं हूँ' इसके आदि-प्रथम कोई है वह भी मैं नहीं, 'मैं हूँ' इसके अंत कोई है वह भी मैं नहीं और 'मैं हूँ' इसके मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ। मैं नहीं और मैं हूँ के आदि-अंत-मध्य कोई है वही मैं हूँ।

## ५
## आकिंचन्यभावना

**अब आकिंचन्यभावना लिखते हैं :-**

**दोहा -** मेरा मुझसे अलग नहिं, सो परमात्मा देव।
ताकूं वंदू भाव से, निशि-दिन करता सेव।।१।।
मेरा मुझसे अलग नहिं, सो स्वरूप है मोय।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, अंतर-बाहिर जोय।।२।।
जो अपना निजरूप है, जानन-देखन ज्ञान।
इस बिन और अनेक हैं, लो मैं नहीं सुजान।।३।।
अन्य द्रव्य मेरा नहीं, मैं मेरा ही सार।
धर्मदास क्षुल्लक कहै, सो अनुभव सिरदार।।४।।

वार्तिक - मेरे ज्ञान-दर्शनमय स्वरूप बिना अन्य किंचित्मात्र भी मेरा नहीं। मैं किसी अन्य द्रव्य का नहीं, मेरा कोई अन्य द्रव्य नहीं। जो मुझसे अलग है, उससे मैं भी अलग हूँ ऐसे अनुभव को आकिंचन्य कहते हैं। वही अनुभव मुझे है। मैं आत्मा हूँ, उसीको मैं अपना समझता हूँ। हे आत्मन् ! अपने आत्मा को देह से अलग ज्ञानमयी, अन्य द्रव्य की उपमारहित तथा स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित जानो।

देह है वह मैं नहीं तथा देह के भीतर-बाहिर आकाशादिक

है वह भी मैं नहीं। देह तो अचेतन-जड़ है, हड्डी, मल-मूत्र से बनी है तथा तन, मन, धन से बनी है। मैं प्रारंभ से ही इस देह से ऐसे अलग हूँ जैसे अंधकार से सूर्य अलग है।

यह ब्राह्मण, क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रपना तथा जाति और कुल देह का है। स्त्री, पुरुष और नपुंसक लिंग भी देह का है। मेरा नहीं। जो अपने को देह जानता है-मानता है वह बहिरात्मा-मिथ्यादृष्टि है। यह गोरापना, साँवलापना, राजापना, रंकपना, स्वामीपना, सेवकपना, पंडितपना, मूर्खपना, गुरुपना, चेलापना इत्यदि जितनी रचना है वह सब देह की है, मेरी नहीं, मैं तो ज्ञाता हूँ। नाम, जन्म और मरणादिक देह का धर्म है। तीन लोक तीन काल में जितना नाम है वह मेरा नहीं। ये तीन लोक तीन काल व लोकालोक हैं तो मुझसे अलग हैं जैसे सूर्य से अंधकार अलग है। मैं जैन मतवाले वैष्णव मतवाले आदि जितने मतवाले हैं उनका न चेला हूँ और न ही गुरु हूँ। मैं कर्ता, कर्म, क्रिया करण, संप्रदान, अपादान और अधिकार इन सबसे अलग हूँ।

**दोहा** - एक अकिंचन भावना, भावै सुरत संम्हाल।
धर्मदास सांची लिखै, मुक्त होय तत्काल।।१।।
अपनो आपो देखकै, होय आपको आप।
होय निश्चित तिष्ठयो रहै, किसका करना जाप।।२।।

**प्रश्न - हे सद्गुरु ! आपके क्या निश्चय है ?**

**उत्तर** - कहता हूँ, तू निश्चय धारण कर ! मैं 'मैं' दो हैं। कौन कौन से 'मैं' दो हैं। सुन ! युक्त से कहता हूँ। 'चूल्हे में अग्नि' इस वचन के समान मुख से बोला गया 'मैं' यह वचन, यह तो मैं हूँ नहीं। बाकी (अनुभवगम्य जो मैं है वही मैं हूँ।)

**प्रश्न - मुझे मालूम हुआ कि वचन में जो 'मैं' है वह तो**

**आप हो नहीं। 'अग्नि चूल्हे में है' ऐसा वचन सुनकर कोई मुख में अग्नि देखेगा तो मुख में अग्नि दिखाई देगी नहीं। अथवा 'वह चंद्रमा, मेरी अंगुली के ऊपर' है ऐसा वचन सुनकर कोई अपनी अंगुली के ऊपर चंद्रमा देखेगा तो अंगुली के ऊपर चंद्रमा दिखलाई देगा नहीं। इसलिये मेरे यह धारणा हुई कि वचन में जो 'मैं' है वह तो आप हो नहीं जो वचनातीत 'मैं' है वही आप हो। हे सद्गुरु ! और कहो आपके क्या निश्चय है ?**

**उत्तर -** 'मैं' है सो मैं नहीं। तथा 'मैं' के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं, बाकी कोई है वही मैं हूँ।

और सुनो ! मुझे मुझसे जितनी रचना अलग दिखाई देती है वह मैं नहीं, तथा जो रचना मुझे दिखलाई देती है एक तो वह, दूसरा मैं देखनेवाला इन दो का अग्नि-उष्णता का, सूर्य-प्रकाश का और सुवर्ण-पीतादि गुण का जैसा मेल है वैसा मेल नहीं, नहीं, नहीं।

और सुनो ! जैसे सूर्य के प्रकाश में जो कोई शुभाशुभ पाप-पुण्य करता है उसका फल सुख-दुःखादिक जो करता है वही भोगता है, सूर्य का प्रकाश उनसे अलग रहता है। वैसे ही मेरे ज्ञान के प्रकाश में जाल-जंजाल, निद्रा, स्वप्न सुषुप्ति, सुखदुःख, जन्म-मरण नामादिक जगत-संसार सब भासते हैं, पर ज्ञान का प्रकाश उनसे अलग रहता है।

और सुनो ! जैसे समुद्र के ऊपर कल्लोल चलती है वैसे ही मेरे केवलज्ञान समुद्र के ऊपर मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-अंतःकरण आदि व तन-मन-धन-वचन आदिक की रचना है, परन्तु यह तन-मनादिक की रचना ज्ञान-स्वभाव से अग्नि-उष्णता के समान तन्मयी नहीं। सुन ! जैसा मैं हूँ वैसा ही कोई दूसरा होगा तो उसे ही

मेरा और मेरे केवलज्ञान स्वभाव का निश्चय होगा।

दोहा - धर्मदास यह नाम है, सो शरीर को जान।
शरीर जैसो मैं नहीं, यह तू निश्चय मान।।१।।

**अर्थ :-** समझाता है और समझता है ये दो हैं, वह भी मैं नहीं। नहीं समझाता है और नहीं समझता है ये दो हैं, वह भी मैं नहीं। समझाता है और समझता है तथा नहीं समझाता है और नहीं समझता हैं ये चार हैं सो भी मैं नहीं। तथा इन चार के कोई आदि-अंत-मध्य है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव ये चार हैं सो भी मैं नहीं। तथा इन चार के कोई आदि-अंत-मध्य है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। लोकालोक है सो भी मैं नहीं। तथा लोकालोक के कोई आदि-अंत-मध्य है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। रात्रि-दिवस है वह भी मैं नहीं। तथा रात्रि के कोई आदि-अंत-मध्य है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ। तम-प्रकाश है वह भी मैं नहीं तथा तम-प्रकाश के आदि-अंत-मध्य कोई है वह मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। जिसको अपेक्षा लग सकती है और जिसको अपेक्षा नहीं लग सकती वह भी मैं नहीं। तथा जिसको अपेक्षा लग सकती है और जिसको अपेक्षा नहीं लग सकती इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ। एक-अनेक है वह भी मैं नहीं। तथा एक-अनेक के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। 'मैं' नहीं आया, नहीं आवेगा, नहीं आता है, ऐसा कोई है जो प्रथम के भी प्रथम अन्य वस्तु के निवृत्ति रूप है अलग है

वही मैं हूँ।

गुप्त-प्रकट है सो भी मैं नहीं। तथा गुप्त-प्रकट के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ। वचन से कहने में आता है वह भी मैं नहीं, वचन से कहने में नहीं आता है वह भी मैं नहीं। तथा वचन से कहने में आता है और वचन से कहने में नहीं आता इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। हा हा हा हा 'मैं' शब्द के द्वारा स्वानुभव सम्यग्ज्ञान का परमात्म स्वरूप पूर्ण ज्ञान का अपूर्व मनन हुआ। यही स्वभावना परमानन्द सुख में लय होनेवाली है। जैसे मूल से ही अंधकार है सो तो अंधकार ही है तथा सूर्य है सो सूर्य ही है वैसे ही ज्ञान है सो मूल से ही ज्ञान है तथा अज्ञान है सो वह भी मूल से ही अज्ञान है। इन दोनों को एक तत्स्वरूप तन्मयी नहीं जानना-नहीं मानना। मैं हूँ सो मैं ही हूँ तथा और है सो और ही है। जिसके त्याग-ग्रहण की इच्छा है सो भी मैं नहीं, जिसके त्याग-ग्रहण की इच्छा नहीं सो भी मैं नहीं। तथा जिसके त्याग-ग्रहण की इच्छा है और जिसके त्याग-ग्रहण की इच्छा नहीं इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ। जो आपको मुक्त मानता है सो भी मैं नहीं और जो आपको बँधा मानता है सो भी मैं नहीं। तथा इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई बचा है वही मैं हूँ। मैं हूँ और मैं नहीं ऐसा भी मैं नहीं तथा मैं हूँ और मैं नहीं इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है वह भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ - बंध-मोक्ष-, लोक-अलोक युक्ति, जगत ये सब मेरे सन्मुख ऐसे हैं जैसे सूर्य के सन्मुख अमावस्या की मध्य रात्रि का अंधकार।

मैं ० ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ० ० ० ऐसा नहीं तथा ० ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ० ० ० इनके आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कोई है वही मैं हूँ।

ओं नमः सिद्धेभ्यः अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ल्ह ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व ष श स ह ळ क्ष त्र ज्ञ क का ख खा ग गा घ घा ङ ङा च चा छ छा ज जा झ झा ञ ञा ट टा ठ ठा ढ ढा ण णा प पा फ फा ब बा भ भा म मा य या र रा ल ला व वा ष षा श शा स सा ह हा क्ष क्षा त्र त्रा ज्ञ ज्ञा।

## इति क संपूर्ण

## ६
## मेरी भावना

**अब मेरी भावना लिखते हैं :-**

मैं नहीं, परन्तु मैं बिना मेरा अनुभव-मनन होता नहीं, इसलिये मैं कोई वस्तु हूँ। इसका बड़ा उपकार है, मैं कोई वस्तु नहीं होता तो मुझे मेरा निश्चय निर्विकल्प निराबाध अनुभव-मनन नहीं होता। अब मैं हूँ नहीं परन्तु अनहोना बनकर मैं मेरा अनुभव-मनन करता हूँ। कहनेवाले ने जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य कहे हैं सो मैं छह द्रव्य भी नहीं तथा इन छह द्रव्यों के आदि-अंत-मध्य कोई हैं सो भी मैं नहीं। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतन्त्व, मूर्तित्व और अमूर्तित्व ये सामान्य गुण हैं। सो मैं छह द्रव्य नहीं तथा इन छह द्रव्यों के समुच्चय रूप दस सामान्य गुण कहे सो भी मैं नहीं। छह द्रव्य तथा छह द्रव्यों के समुच्चयरूप दस गुण कहे सो इनके आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कहने, सुनने, देखने, विचारने में नहीं आया, नहीं आवेगा, नहीं आता है ऐसा कोई है सो ही 'मैं' के प्रथम के भी प्रथम अन्य वस्तु के निवृत्ति स्वरूप अलग कोई है वही मैं हूँ।

**प्रश्न - तू कौन है ?**

**उत्तर -** मैं 'मैं' नहीं, परन्तु 'मैं' बिना मेरी बात कौन कहे,

इसलिये कहता हूँ - मैं आकार-निरकार नहीं तथा आकार-निराकार के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। रूपी-अरूपी भी मैं नहीं तथा रूपी-अरूपी के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। मूर्ति-अमूर्ति भी मैं नहीं तथा मूर्ति-अमूर्ति के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। जीव-अजीव भी मैं नहीं तथा जीव-अजीव के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नही। चेतन-अचेतन भी मैं नहीं तथा चेतन-अचेतन के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नही। ज्ञान-अज्ञान भी मैं नहीं तथा ज्ञान-अज्ञान के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नही। नाम-अनाम भी मैं नहीं तथा नाम-अनाम के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नही। शून्य-अशून्य भी मैं नहीं तथा शून्य-अशून्य के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नही। लोक-अलोक भी मैं नहीं तथा लोक-अलोक के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। अस्ति-नास्ति भी मैं नहीं तथा अस्ति-नास्ति के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं, आदि, अंत, मध्य है सो भी मैं नहीं तथा इन आदि, अंत, मध्य के प्रथम पीछे बीच में है सो भी मैं नहीं। तन, मन, धन, वचन है सो भी मैं नहीं तथा इन तन, मन, धन, वचन के आदि-अंत-मध्य है सो भी मैं नहीं।

**प्रश्न - हे सद्गुरु आप कौन हो ?**

**उत्तर** - तू है सो तो तू ही है परन्तु मैं हूँ सो मैं नहीं। कहता हूँ - सुन ! तू प्रश्न पूंछता है उसके पहले तू है, तू नहीं होता तो तुझसे प्रश्न पूछना कैसे बनता। तथा उत्तर देने के पहले मैं भी हूँ यदि उत्तर देने के पहले मैं नहीं होता तो कौन उत्तर देता। हे भाई ! कह प्रश्न पूछने के पहले तू कौन है ?

और सुन, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋतुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवं भूत ये सात नय हैं, तथा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक

ये दो नय हैं, अथवा स्याद्वाद नय है, तथा एकांत-अनेकांत नय हैं अथवा निश्चयनय, व्यवहारनय हैं इत्यादि जितने नय हैं सो भी मैं नहीं तथा इन नयों के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कोई हैं सो ही मैं हूँ। मुझमें और परमब्रह्म परमात्मा में सूर्य और अंधकार के समान अंतर नहीं है।

पिंडस्थ ध्यान, पदस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान और रूपातीत ध्यान - ये चार ध्यान हैं सो भी मैं नहीं तथा इन चार ध्यानों के प्रथम कोई है सो भी मैं नहीं, इन चार ध्यानों के अंत कोई है सो भी मैं नहीं तथा इन चार ध्यानों के मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कोई है सो ही मैं हूँ।

सूर्य का ध्यान सूर्य क्या करे तथा मिश्री है सो मीठे रस का ध्यान क्या करे ! निराकार तो चिंतवन से, कहने से, दिखने से और विचारने से अलग है उसका ध्यान तो हो सकता नहीं। तथा आकार है सो चिंतवन में, कहने में, दिखने में और विचारने में आता ही है सो उसका ध्यान क्या करना ? तथा जैसे सूर्य से अंधकार अलग है वैसे ही जो मुझसे अलग है उसका ध्यान तो मैं क्या करूँ। तथा जैसे आकाश के भीतर घट-पटादिक हैं वैसे ही मेरे ज्ञान के भीतर कोई है उसका भी मैं क्या ध्यान करूँ। तथा जगत की भी मुझे खबर नहीं कि यह जगत कहाँ से है, कब से हैं, कब तक है, कहाँ इस जगत की आदि है, कहाँ इस जगत का अंत है। तथा चित्र-विचित्र सूर्य, चंद्रमा, तारा, तम, प्रकाश, पर्वत, नदी, समुद्र, महल, मंदिर और वृक्ष आदि अनेक अगणित वस्तुएँ हैं उनमें से मैं किसको जगत कहूँ, अतः नाममात्र ही जगत कहने में आता है। परन्तु जगत किस वस्तु का नाम है यह मुझे निश्चय खबर नहीं। जब मुझे जगत की निश्चय खबर नहीं तो जगत

का ध्यान मैं क्या करूँ। तथा मुझे मेरी भी खबर नहीं कि मैं कहाँ से आया, कब से हूँ, कहाँ तक हूँ। कहाँ मेरी आदि है और कहाँ मेरा अंत है ऐसी यथावत् निश्चय खबर मेरी मुझे नहीं है। जब मेरी मुझे खबर नहीं तो मेरा मैं क्या ध्यान करूँ ?

तन, मन, धन, वचन, बुद्धि, चित्त अहंकार, अंतःकरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मोह, ममता, माया, काया, छाया, जाया, जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, आकार, निराकार, लोक, अलोक, जगत, युक्ति, योग, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, जीव, अजीव इत्यादि बहुत नाम हैं। इन नामों में मैं ऐसा नाम नहीं। 'मैं' का कोई नाम है ही नहीं। 'मैं' का तो नाम 'मैं' ही है। मैं ऐसा तो हूँ नहीं जो देखने में आता है, जानने में आता है, कहने में आता है, विचारने में आता है, सुनने में आता है, प्रमाण में आता है, लिखने में आता है, पकड़ने में आता है। सो तो मैं जड़मूल से नहीं ही नहीं हूँ तथा देखने में आता है जानने में आता है, कहने में आता है, विचारने में आता है, सुनने में आता है, प्रमाण में आता है, लिखने में आता है, पकड़ने में आता है। ऐसा कोई है तथा आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कोई है सो ही मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ। जो तीन लोक संसार जगत जड़ स्वरूप अचेतन है उसमें चेतन सत्ता जीव-परमात्मा की है। जैसे पृथ्वी के ऊपर सूर्य का प्रकाश है वैसे ही तन-मन-धन-वचन तथा तू-मैं-यह-वह आदिक के ऊपर केवलज्ञान स्वरूपी सूर्य का प्रकाश है।

तू, मैं, यह, वह, तेरा, मेरा, भला, बुरा, छोटा, मोटा, जन्म, मरण, नाम, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, एक दो, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव अजीव, शिष्य, गुरु, ज्ञान, अज्ञान, आकार, निराकार, तन, मन, धन, वचन कहना, सुनना, देखना, जानना, विचारना, जीव,

अजीव, आस्त्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप इन सबमें केवल ज्ञानस्वरूप परमात्मा है यह दर्पण के समान है। सर्वत्र उसका ज्ञान प्रकाश फैल रहा है। उसमें तीन लोक जगत झलकता है। परन्तु जगत और परमात्मा अग्नि और उष्णता के समान एक नहीं, मूल से ही भिन्न है। केवल ज्ञानस्वरूप परमात्मा रूपी दर्पण का जिस जीव को अनुभव लेना होवे वह उक्त प्रकार अनुभव लेकर परम सुखी होओ। इसी बात को आगे और स्पष्ट करता हूँ - परमात्मा को दर्पण के समान जानना-मानना। जैसे एक मोटे दर्पण के सन्मुख एक अग्नि का कुंड और दूसरा जल का कुंड रखने पर वे दोनों उस दर्पण में यथार्थ दिखलाई देते हैं। किन्तु वह दर्पण ऐसा होने पर भी न इससे तो ठंडा हुआ है और न उष्ण ही। यद्यपि दर्पण में दोनों प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं इसे न तो सत्य ही कहा जा सकता है और न असत्य ही कहा जा सकता है। जो दर्पण में अग्नि होना सत्य माना जाय तो उसे उष्ण होना चाहिये, परन्तु वह इससे उष्ण हुआ है नहीं। जो दर्पण में जल होना सत्य माना जाय तो उसे ठंडा होना चाहिये, परन्तु वह इससे ठंडा हुआ नहीं व जल के समान द्रव होकर श्रवा भी नहीं। परन्तु दर्पण में जल और अग्नि दिखलाई तो प्रत्यक्ष देती हैं सो उसे असत्य कैसे कहा जाय। जो प्रत्यक्ष दिखलाई देता है उसे असत्य कहूँ तो मैं वर्तमान में प्रत्यक्ष होते हुए भी असत्य ठहरूँगा, सो मैं असत्य हूँ नहीं, इसलिये यही स्वीकार करना उचित है कि (केवलज्ञान स्वरूप परमात्मरस से भिन्न) लोक-अलोक, जीव-अजीव तथा आकार-निराकार भी हैं और (इन्हें प्रतिभासित करनेवाला) इन सबसे मूल से ही भिन्न केवलज्ञान स्वरूप परमात्मा भी है। (विकलरूप या शब्दरूप:) मैं से तथा पूर्वोक्त अन्य सब पदार्थों से जो अलग है सो ही मैं हूँ।

लोक में जितना भी व्यवहार मैं का है वह मैं हूँ नहीं। अर्थात् जहाँ मैं, तू, यह, वह यह व्यवहार है वहाँ तो मैं हूँ नहीं। बाकी कोई सो ही मैं हूँ।

मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और माण्ड ये चौबीस परिग्रह हैं सो भी मैं नहीं। इन चौबीस के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कोई है बचा है सो ही मैं हूँ। तन, मन, धन, वचन है सो भी मैं नहीं। तथा तन-मन-धन-वचन के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। बाकी कोई है सो ही मैं हूँ।

हे सदाकाल जागती ज्योति परब्रह्म परमात्मा ! जैसा तू है, वैसा ही मैं हूँ यह मेरी मति है। लोक में यह वार्ता प्रसिद्ध है कि 'जिसकी जैसी मति उसकी वैसी गति।' इसलिये मेरे भीतर मुझे मेरी यह मति दृढ़-अचल है कि जैसा सदाकाल जागती ज्योति परब्रह्म परमात्मा है वैसा ही मैं हूँ। इस वर्तमान पंचमकाल में वज्रवृषभनाराच संहनन के नहीं होनेपर भी तथा दुर्धर तप, व्रत-शीलादिक के नहीं होनेपर भी मैं तो जैसा जागती ज्योति परब्रह्म परमात्मा है वैसा ही हूँ।

अब उक्त विषय की दृढ़ता के लिये दृष्टांत देते हैं - जैसे स्फटिक मणि में काले, पीले, लाल, हरे, डंक के निमित्त से काला, पीला, लाल, हरा विकार दिखलाई देता हैं तो भी स्फटिक मणि तो जैसा का तैसा स्फटिक मणि ही है वैसे ही पुद्गलपिंड़ भाव रागादिक वेद अथवा आठ प्रकार के द्रव्यकर्म, रागादि भावकर्म और शरीरादिक नोकर्म के होते हुए भी मैं तो जैसा का तैसा सदाकाल जागती ज्योति परब्रह्म परमात्मा ही हूँ। विरोधी पदार्थ एक मिला

हुआ सा दिखलाई देता है, परन्तु मैं तत्स्वरूप तन्मयी नहीं हुआ हूँ, मेरा यह ज्ञान मैं ही जानता हूँ। कहावत है - घायल की गति घायल जाने, क्या जाने वेद्य बिचारा।

जो वचन से कहने में आता है, वचन नहीं कहने में आता है और वचन ये तीन हैं सो तो मैं मूल से ही नहीं। तथा मन से चिंतवन में आता है, मन से चिंतवन में नहीं आता है और मन ये तीन भी मैं मूल से ही नहीं। तन-मन-धन-वचन से जड़-मूल से ही जो अगोचर है सो तो मैं ही हूँ।

मैं ही हूँ ये तीन पद हैं सो अचेतन जड़ है तथा मैं अजीव-अचेतन नहीं हूँ। इन तीन पदों में और मेरे स्वरूप में बड़ा अंतर हैं। पहले बहिरात्मदशा में मेरे मनमें यह दृढ़ धारणा थी कि मैं मनुष्य हूँ, मैं नारी हूँ, मैं छोटा हूँ, मैं मोटा हूँ, मैं कर्ता-हर्ता-धर्ता हूँ। अब मेरे अंतःस्थल में यह पक्की-मजबूत अचल धारणा जम गई है कि मैं यह शब्द है और शब्द अचेतन-जड़ है, इसलिये मैं नहीं और जब मैं नहीं तो मनष्य देव नारकी तिर्यंच कहाँ से होऊँगा ? मैं नहीं और मैं हूँ तथा वह नहीं और वह ये चार हैं सो शब्द वचन हैं। इन चार शब्द-वचनों में और केवलज्ञान में सूर्य और अंधकार के समान अंतर है। मैं शब्द-वचन के द्वारा मैंने मेरा निश्चय लिया कि मैं केवलज्ञान हूँ।

## ७
## आत्म मनन

**अब अपूर्व मनन लिखते हैं :-**

**दोहा** कहना सुनना देखना, अर सर्वनाम से भिन्न।
ऐसो कोई है सही, ताकूं प्यावै वन्न।।१।।

मैं नहीं एक तो यह और दूसरा मं हूँ ये दो हैं, सो भी मैं नहीं। तथा मैं नहीं और मैं हूँ इन दो क़े आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं। तू, मैं, यह, वह - ये चार हैं, सो मैं नहीं। तथा तू, मैं, यह, वह - इन चार आदि-अंत-मध्य कोई हैं, सो भी मैं नहीं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये तीन हैं सो भी मैं नहीं।उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नही। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन गुणयुक्त तन्मयी वस्तु एक ही है। दृष्टांत जैसे सुवर्ण ध्रुव, सुवर्ण के कटक आदि का उत्पाद और सुवर्ण की मुद्रिका आदि का व्यय - ये तीन सुवर्ण से अलग नहीं हैं।

शून्य-अशून्य ये दो हैं, सो भी मैं नहीं। तथा इन शून्य-अशून्य के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। लोक-अलोक है, सो भी मैं नहीं। तथा इस लोक-अलोक के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। सर्व है और सर्व नहीं ये दो हैं, सो भी मैं नहीं। तथा इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। नास्ति और अस्ति ये दो हैं, सो भी मैं नहीं। तथा इन नास्ति-अस्ति के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। विधि-निषेध हैं, सो भी मैं नहीं। तथा इन विधि-निषेध के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी

मैं नहीं। वचन से जितना कहने में आता है, सो भी मैं नहीं। तथा वचन से जितना कुछ कहने में आता है इसके आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छः हैं सो मैं नहीं तथा इन जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप ये नौ हैं, सो भी मैं नहीं तथा जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन नौ के आदि-अंत-मध्य कोई है, सौ भी मैं नहीं। सोऽहम् एक तो यह और दूसरा न सोऽहम् ये दो हैं, सो भी मैं नहीं तथा इन सोऽहम् और न सोऽहम् के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। है और नहीं ये दो हैं, सो भी मैं नहीं। तथा है और नहीं इन दो के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। इत्यादि पूर्वोक्त से जो अलग का अलग है, सो ही मैं हूँ।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये छह द्रव्य हैं, तो छह के छह ही हैं। इन छह द्रव्यों में कभी और सातवां द्रव्य नहीं हुआ। अर्थात् न छह द्रव्य के सात द्रव्य हुए और न छह द्रव्य के सात द्रव्य हुए और न छह द्रव्य के पाँच द्रव्य हुए। इन छह द्रव्यों में ज्ञान गुण एक जीव द्रव्य में हैं। बाक़ी पाँच द्रव्यों में ज्ञान गुण नहीं।

सर्व जितना कुछ मेरा है, तो मैं किसका त्याग करूँ और किसको ग्रहण करूँ। तथा सर्व जितना कुछ अन्य है, मेरा नहीं, मेरा है ही नहीं तो इसका भी मैं क्या त्याग करूँ और क्या ग्रहण करूँ। आकाश है सो किस वस्तुका त्याग करे और किस वस्तु

को ग्रहण करे। बंध, मोक्ष, सुख-दुःख, जीव-अजीव, ज्ञान-अज्ञान, चेतन-अचेतन, तू-मैं, यह-वह, आत्मा-अनात्मा, योग, युक्ति, जगत, परमात्मा, सिद्ध-असिद्ध, लोक-अलोक इत्यादि तथा तन-मन-धन-वचन ये सब षट् द्रव्यों से अलग हैं नहीं।

**प्रश्न - षट् द्रव्य कौन-कौनसे है ?**

**उत्तर** - जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। वे कभी सात हुए नहीं, होंगे नहीं और हैं नहीं। तथा ये छह द्रव्य कभी पाँच हुए नहीं, होंगे नहीं और हैं नहीं। ये छह द्रव्य तो छह ही हैं। इन छह द्रव्यों में से निकल कर अलग कोई सातवाँ द्रव्य हो जावे उसकी बलिहारी है वही धन्य है।

सर्वनाम अनाम से अलग है, उसका क्या नाम लेना। तथा सर्वनाम अनाम से अग्नि-उष्णता के समान मिल रहा है, उसका भी क्या नाम लेना। यह जितना लोकालोक है तथा लोकालोक में जितनी रचना है, न्याय-अन्याय, व्यवहार, निश्चय-अनिश्चय है, सो सर्व मैं वस्तु की तरफ (ओर) है तथा हम वस्तु की तरफ है। एक तो मैं वस्तु और दूसरी हम वस्तु ये दोनों मेरे ज्ञान स्वरूप से ऐसी अलग हैं जैसे पूर्व से पश्चिम दिशा अलग है। अथवा जैसे सूर्य से अमावस्या की काली रात्रि अलग हैं वैसे ही मेरे निज स्वरूप ज्ञान से मैं वस्तु और हम वस्तु ये दोनों अलग हैं। परन्तु लोक में इस मैं वस्तु और हम वस्तु का कोई लाखों करोड़ो में से एक के ऊपर ऐसा उपकार हो जाता है कि वह एक छह द्रव्यों में से निकल कर अलग सातवाँ हो जाता है। वह सातवाँ हुए बाद छह द्रव्यों में आने का नहीं। इस कथनी को सुनकर पंडित लोक आपको ज्ञान मानते हुए वाद-विवाद नय-न्याय में डूबो देंगे आप जैसा का तैसा ही रहेगा। तथा मूर्ख जन तो छह द्रव्य

ही नहीं जानेंगे तो छह द्रव्यों से भिन्न सातवाँ द्रव्य कहाँ से जानेंगे। तथा हजारों, लाखों करोड़ों में कोई एक भद्र जीव इस कथनी को पढ़कर 'अकस्मात् चमकेगा और' मुख से ऐसा बोलेगा कि हो, हो, हो, हो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों को छोड़कर अलग सप्तमी वस्तु क्या है, क्या है, कैसी है, कहाँ है इत्यादि विचार करता हुआ कदाचित सप्तमी वस्तु को, पहुँच जावे तो पहुँच भी जावे। छह द्रव्यों को छोड़कर सातवीं वस्तु का विचार होनेपर पूरी पंडिताई पर और विद्या-बुद्धि पर पानी फिर जाता है और विचार भी छह द्रव्यों में रह जाता है। तथा छह द्रव्यों को छोड़कर सातवीं वस्तु का विचार करनेवाला आप ही आप सातवीं वस्तु हो जाता है। सातवीं वस्तु हुए बाद जली हुई रस्सी के समान कुछ काल तक विचार रहता है। उस विचार के द्वारा वह सातवाँ आपको ऐसा मानता है कि, मैं नहीं तथा मैं के आदि-अंत-मध्य कोई है, सो भी मैं नहीं। छह द्रव्य भी मैं नहीं। जो इन सब से बचा, सो ही मैं सातवां हूँ। मैं वस्तु है सो छह द्रव्यों से अलग नहीं। मैं की बलिहारी है जो मुझे मैं के प्रताप मेरे स्वरूप की प्राप्ति की प्राप्ति हुई।

**प्रश्न - तुम 'मैं' हो या नहीं ?**

**उत्तर -** तू जिसको मैं कहता है सो तो मैं मूल से ही नहीं। किन्तु मैं बिना ही मेरा परमात्मा-अनुभव स्वरूप ज्ञान की सूचना एक है, इसलिये प्रारंभ से ही मैं हुआ नहीं।

**प्रश्न - तुम 'मैं' नहीं हो तो कौन हो ?**

**उत्तर -** मैं जीव नहीं, मैं पुद्गल नहीं, मैं धर्म नहीं, मैं अधर्म नहीं, मैं आकाश नहीं, मैं काल नहीं। मैं छह द्रव्य में हूँ, परन्तु तत्स्वरूप हूँ नहीं। जैसे सूर्य का प्रतिबिंब तेल के, पानी के, दूध

के नवनीत के और इक्षुरस के घटादिक से प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है, परन्तु दिखनामात्र ही है, सूर्य कुछ तत्स्वरूप हुआ नहीं। वैसे ही मैं केवल ज्ञानी हूँ। मैं छह द्रव्य हूँ, परन्तु तत्स्वरूप हूँ नहीं। छह द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व, मनुष्य देव, तिर्यंच, नारकी, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, तन-मन-धन-वचन, तू-मैं-यह-वह, लोक-अलोक, विधि-निषेध, अस्ति-नास्ति, शून्य-अशून्य, सर्वनाम,-अनाम, सर्वरूप-अरूप, आकार-निराकार इत्यादि से मैं अग्नि-उष्णता के समान न मिला था, न मिलूँगा और न मिला हूँ, ऐसा कोई है सो ही मैं हूँ। इन सबसे यह ऐसा अलग है जैसे अमावस्या की रात्रि के अंधकार से सूर्य अलग है उसमें मन, बुद्धि, विचार, तन-मन-धन-वचन, सोऽहम्, कोऽहम्, तूं-मैं-यह-वह, समझना-समझना, सुनना-सुनाना, बोलना-बतलाना इत्यादि कुछ भी शुभाशुभ संकल्प-विकल्प, विधि-निषेध, अस्ति-नास्ति, शून्याशून्य नहीं है।

**प्रश्न - तो यह सब कहाँ है ?**

**उत्तर** - यह सब छह द्रव्यों में गर्भित है।

**प्रश्न - तुम छह द्रव्यों में गर्भित हो कि नहीं ?**

**उत्तर** - मैं छह द्रव्यों में हूँ, परन्तु हूँ नहीं। जैसे काष्ठ में अग्नि है, परन्तु है नहीं। अथवा जैसे घट में आकाश है, परन्तु है नहीं। अथवा जैसे पृथ्वी के ऊपर सूर्य का प्रतिबिंब-प्रकाश है, परन्तु है नहीं। वैसे ही मैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों में हूँ, परन्तु हूँ नहीं। छह द्रव्यों से जो निश्चय ये भिन्न है सो ही मैं हूँ।

○ ○ ○ ○ ○ ये बिन्दु एक अंक बिना प्रमाण में आती नहीं। तथा यह बिन्दु एक अंक में ऐसे प्रविष्ट हो रही है जैसे दूध में घी तथा तिल में तेल। जैसे फूल में सुगंध प्रविष्ट हो

रही है वैसे ही एक में यह बिन्दु प्रविष्ट हो रहा है। देखो निशानी ०'०'१। पहले बिन्दु लिखी है बाद में एक है। १० देखो, यहाँ प्रथम एक अंक लिखा है; बाद में बिन्दु लिखी है। अब यहाँ विचार करो कि बिन्दु में से एक अंक हुआ कि एक अंक में से बिन्दु हुई। सुनो, छह द्रव्यों में ज्ञान गुण है सो तो एक अंक के बराबर है। अर्थात् छह द्रव्यों से भिन्न है सो सप्तम है। उस सप्तम का केवल ज्ञान गुण छह द्रव्यों में है सो तो एक अंक बराबर है तथा जो सप्तम है वह ० बिन्दु बराबर है। उस परब्रह्म परमात्मा का केवल एक ज्ञान गुण समुद्र में ऐसे प्रविष्ट हो रहा है जैसे निर्मल-निराकार समुद्रमें कल्लोल अथवा नमक की डली प्रविष्ट हो रही है। अधिक क्या लिखूँ, क्या समझूँ।

**चौपई** - धर्मदाय छुल्लक योनाम, पुद्गल पिण्डतणों है जाण।
सर्वनाम के वार न पार, सर्वनाम सैं रहित अपार।।१।।
ऐसो सोऽहं सोऽहं सार, धर्मदास ध्यावै निरधार।
सो ही सोऽहं सोऽहं सार पूरण कर देख्यो अवतार।।२।।

**दोहा** - मैं बन्दू मुनिराज को, भाव-भक्ति उरधार।
धर्मदास सो नाम है, क्षुल्लक व्रत जू सार।।१।।

**वार्तिक** - श्री सद्गुरु के उपदेश से मुझे मेरा स्वानुभव-केवलज्ञान जो मुझे था, सो वह का वही हुआ।

**प्रश्न - क्या हुआ, कुछ तो कहो ?**

**उत्तर** - क्या कहूँ, उस केवलज्ञान रूप परमात्मस्वरूप का और मेरा ऐसा मेल हो गया जैसे नमक की डली का खारे समुद्र में गुप्त एक मेल हो जाता है। वचन से नहीं कहा जा सकता।

**प्रश्न - कुछ तो कहो ?**

**उत्तर** - जितना कहता हूँ उससे तू उस केवलज्ञान स्वरूप

परमात्मा को भिन्न मानना।

**प्रश्न - ठीक है, भिन्न ही मानूँगा ?**

**उत्तर -** सुनो ! लोक-अलोक, जगत, युक्ति, योग, विधि-निषेध, बंध-मोक्ष, जन्म-मरण, नाम-अनाम, सुख-दुःख, रूप-अरूप, आकार-निराकार, तन-मन-धन-वचन, शून्य-अशून्य, अस्ति-नास्ति, जीव-अजीव, चेतन-अचेतन, ज्ञान-अज्ञान पर्यन्त जो पूर्वोक्त हैं उनसे तथा तू-मैं-यह-वह इन चार से तिल-तैलवत्, दूध-घीवत् तथा फूल सुगंधवत् जो मिला रहा सा प्रतीत होता है सो वह इन सबसे प्रथम ही से अलग का अलग है, सो है ही है।

**प्रश्न - परमात्मा और तुम एक ही हो या दो हो ?**

**उत्तर -** क्या कहूँ, मेरे और परमात्मा के बीच तीसरा तू है प्रश्न पूछनेवाला है, इसलिये कहता हूँ, तू सून, जैसा परमात्मा वैसा ही मैं, जैसा मैं वैसा ही परमात्मा। इसकमें यह अंतर है जैसे सुवर्ण और सुवर्ण का आभूषण।

**प्रश्न - तुम कौन हो ?**

**उत्तर -** तू, मैं, यह, वह ये चार हैं। तथा इन चार के आदि-अंत-मध्य कोई है, उनके प्रथम के प्रथम के भी प्रथम, उसके भी प्रथम कोई है सो तो मैं हूँ नहीं। परन्तु मैं अनहोना सा बनकर कहता हूँ, मैं इसके प्रथम कोई है सो मैं मूल से ही नहीं। तुझे समझाने के लिये अनहोना सा मैं बनकर तुझे समझाता हूँ, सो तू समझकर अपने स्वरूप को ग्रहण करना।

**प्रश्न - आपने अपना क्या स्वरूप ग्रहण किया ?**

**उत्तर -** मैं के प्रथम के भी प्रथम तथा उसके भी प्रथम जिस प्रथम के पहले कोई नहीं। बाकी कोई है सो ही मैं हूँ, सो ही मैं हूँ। तथा मुझसे अलग परद्रव्य हैं सो पर ही है।

**प्रश्न - आपसे अलग परद्रव्य कौन हैं ?**

**उत्तर -** जितनी रचना मुझे दिखलाई देती है और दिखलाई नहीं देती है, उन दोनों मैं ऐसे अलग हूँ जैसे सूर्य से अंधकार अलग है। तथा जितनी रचना मुझे दिखलाई देती है और दिखलाई नहीं देती है सो यह दोनों ही मुझसे अलग हैं। अर्थात् मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ तथा यह परद्रव्य मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो मैं ही हूँ और परद्रव्य है सो परद्रव्य ही है। अथवा यह परद्रव्य मेरा नहीं है, इस परद्रव्य का मैं पूर्व में हुआ नहीं, यह परद्रव्य पूर्व में मेरा हुआ नहीं। मेरा मैं ही पूर्व में हुआ, परद्रव्य का परद्रव्य ही पूर्व में हुआ। यहाँ परद्रव्य आगे मेरा नहीं होवेगा मैं आगे इसका नहीं होऊँगा। मेरा मैं ही आगे होऊँगा, इसका यही आगे होवेगा।

**प्रश्न - परद्रव्य कौन है ?**

**उत्तर -** तन-मन-धन वचनादिक ज्ञानस्वरूपी आत्मा से जड़ मूल से ऐसे ही अलग है जैसे सूर्य से मध्यरात्रि का अंधकार अलग है। जैसे सूर्य और अंधकार का मेल नहीं, हुआ वैसे ही जड़ और चेतन का मेल न हुआ, होगा और न है। मुझसे मेल दिखलाई देता है, परन्तु है नहीं। ओम नमः सिद्धेभ्यः निकलपरमात्मने नमः। अहं बीजम्, सो अहं शक्तिः, ओं ह्रीं कीलकम्। परमाणु से छोटा है और आकाश से बड़ा है ऐसा जो है सो ही मैं हूँ। समझना और समझाना से जो सर्वथा प्रकार भिन्न है सो ही मैं हूँ। देह है सो मैं नहीं। तथा देह के भीतर, बाहर, मध्य में कोई है सो मैं हूँ नहीं। लोक-अलोक है सो मैं हूँ नहीं। तथा लोक-अलोक के भीतर, बाहर, मध्य में कोई है सो मैं हूँ नहीं। बाकी कोई है सो ही मैं हूँ, सो ही मैं हूँ, सो ही मैं हूँ, सो ही मैं हूँ, सो ही मैं हूँ।

# ८
# भेदविज्ञान भावना

**अब भेदविज्ञान लिखते हैं :-**

**चौपाई -** प्रथम ही भेदज्ञान जो भावे, सो ही शिव सुंदर पद पावै।
तातैं भेदज्ञान मैं भाऊँ, परमातम पद निश्चय पाऊँ।।
क्षुल्लक धर्मदास अब बोलै, देश वचनिका मैं नित बोलै।
बाचो पढ़ो भावमन लाई, तातैं मिलै मोक्ष ठकुराई।।

**दोहा -** भेदज्ञान ही ज्ञान है, बाकी बुरो अज्ञान।
धर्मदास सांची लिखै, भेमराज तूं मान।।

निश्चय से एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में कुछ भी संबंधी नहीं है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य भिन्न-भिन्न प्रदेश रूप है, इसलिये (दो या दो से अधिक द्रव्यों में) एक सत्ता की अप्राप्ति है। प्रत्येक द्रव्य की सत्ता अलग-अलग है। तथा सत्ता एक न होने से एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ आधार-आधेय संबंध भी नहीं है। इसलिये प्रत्येक द्रव्य का अपने स्वरूप में ही प्रतिष्ठा रूप आधार-आधेय संबंध बनता है। इस कारण ज्ञान आधेय है सो वह अपने जानन क्रिया रूप आधार में ही प्रतिष्ठित है, क्योंकि जो जानपना है वह ज्ञान से अभिन्न भाव है, भिन्न प्रदेश रूप नहीं है इसलिये जानन क्रिया रूप जो ज्ञान है वह ज्ञान मैं ही हूँ तथा जो क्रोधादिक है वह क्रोधादिक क्रिया रूप अपने स्वरूप में ही प्रतिष्ठित क्योंकि क्रोधादिक

क्रिया क्रोधादि से अथक्भूत है अभिन्न प्रदेश रूप है, इसलिये क्रोधादिक रूप क्रिया क्रोधादिक में ही होती है। इस प्रकार क्रोधादि में अथवा कर्म-नोकर्म में ज्ञान नहीं है, क्योंकि ज्ञानका तथा क्रोधादि और कर्म-नोकर्म का परस्पर स्वरूप का अत्यंत विपरीतपना है। इनका एक स्वरूप नहीं है, इसलिये इनमें परस्पर आधार-आधेय संबंध का शून्यपना है। तथा जैसे ज्ञान का स्वरूप जानन क्रिया है वैसे क्रोधादि क्रिया नहीं है। तथा जैसे क्रोधादिक का स्वरूप क्रोधादि क्रिया है। वैसे जानन क्रिया रूप स्वरूप नहीं है, क्योंकि किसी भी प्रकार ज्ञान को क्रोधादि क्रिया परिणामरूप अथवा क्रोधादिक को जानन क्रिया परिणाम स्वरूप स्थापित नहीं किया जा सकता। इसलिये जानन क्रिया और क्रोधादिक क्रिया का स्वभाव से भिन्नपना स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता है और स्वभाव के भेद से ही वस्तु का भेद है यह नियम है, इसलिये ज्ञान का और अज्ञान स्वरूप क्रोधादिक का आधार-आधेयभाव नहीं है। यहाँ दृष्टांत द्वारा विशेष बतलाते हैं - जैसे आकाश द्रव्य एक ही है, उसे अपनी बुद्धि में स्थापित कर आधार-आधेयभाव का विचार करते हैं तब आकाश के सिवाय जो अन्य द्रव्य हैं उनका आधाररूप आरोप का निरोध हुआ। इस कारण बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा तो रही नहीं। और जब भिन्न आधार की अपेक्षा नहीं रही तब बुद्धि में यही निश्चय हुआ कि जो आकाश है सो एक ही सो एक आकाश में ही प्रतिष्ठित है। आकाश द्रव्य का अन्य आधार नहीं। आप आपके ही आधार हैं ऐसी भावना करनेवाले को अन्य का अन्य के साथ आधार-आधेयभाव प्रतिभासित नहीं होता। इसी प्रकार जब एक ही ज्ञान को अपनी बुद्धि में स्थापित कर आधार-आधेयभाव का विचार किया जाता है तब शेष अन्य द्रव्यों का आधाररूप आरोप का तो निरोध

हुआ। इसलिये बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा नहीं रही है और जब बुद्धि में भिन्न आधार की अपेक्षा नहीं रही तब एक ज्ञान ही ज्ञान में प्रतिष्ठित ठहरा। इस प्रकार ऐसी भावना करनेवाले को अन्य का अन्य के साथ आधार-आधेयभाव प्रतिभासित नहीं होता। इसलिये ज्ञान है सो तो ज्ञान में ही है और क्रोधादिक है सो क्रोधादिक में ही है। इस प्रकार ज्ञान का तथा क्रोधादि और कर्म-नोकर्म का जो भेदज्ञान है वह भले प्रकार सिद्ध हुआ।

**भावार्थ :-** उपयोग है सो वह तो चेतना का परिणमन ज्ञान स्वरूप है तथा क्रोधादिक भावकर्म, ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म और शरीरादिक नोकर्म ये सब ही पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं, वे जड़ हैं। इनमें और ज्ञान में प्रदेश भेद हैं, इसलिये अत्यंत भेद हैं। यही कारण है कि उपयोग में तो क्रोधादिक तथा कर्म-नोकर्म नहीं है और क्रोधादिक कर्म-नोकर्म में उपयोग नहीं है। इस प्रकार इनमें परमार्थस्वरूप आधार-आधेयभाव नहीं है। अपना-अपना आधार-आधेयभाव आप-आपमें है। इस प्रकार इनमें परमार्थ से अत्यंत भेद है ऐसे भेद को जो जानता है वही भेदविज्ञान है यह भले प्रकार सिद्ध हुआ।

**दोहा** - परमातम अरजगतके, बड़ौ भेद सुन सार।
धर्मदास औरूँ लिखै, वाच करो निरधार।।
जैसे सूरज तम विषैं, नहीं नहीं, सुन वीर।
तैसे ही तमके विषै, सूर्य नहीं रे धीर।।
प्रकाश सूर्य एक है, जड़-चेतन नहिं एक।
धर्मदास सांची लिखै, मनमें धार विवेक।।

स्पर्श आठ, वर्ण पाँच, रस पाँच, गंध दो ये आत्मा नहीं क्योंकि ये स्पर्शादिक पुद्गल अचेतन जड़ हैं। इसलिये आत्मा और अचेतन

पुद्गल में भेद है। तथा शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तप, छाया, आतप और उद्योत ये आत्मा नहीं, क्योंकि ये शब्द-बंधादिक पुद्गल की पर्याय हैं, इसलिये आत्मा और शब्द-बंधादिक में भेद है। तन-मन-धन-वचन ये आत्मा नहीं। कहा है :-

तनता मनता वचनता, जड़ता जड़ से मेल।
लघुता गुरुता गमनता, यह अजीवका खेल।।

अर्थात् आत्मा अजीव नहीं, इसलिये आत्मा और तन-मनादिक में भेद है।

**भावार्थ :-** जैसे सूर्य और अमावस्या की मध्यरात्रि के अंधकार में अत्यंत भेद है वैसे ही आत्मा और अनात्मा में अत्यंत भेद हैं। तन, मन, धन और वचन कुछ और हैं, इसी प्रकार मन, बुद्धि, अहंकार और अंतःकरण कुछ और हैं तथा आत्मा कुछ और है। तू, मैं, यह, वह, तू, हूं सोऽहम् ये सब कुछ और हैं, योग, युक्ति, जगत लोक और अलोक कुछ और हैं, बंध, मोक्ष, पाप, पुण्य कुछ और हैं तथा आत्मा कुछ और है। जैन, वैष्णव, बौद्ध, नैय्यायिक, मीमांसक तथा वेदांती कुछ और हैं और आत्मा कुछ और है। तेरा पंथ, मेरा पंथ, उसका पंथ, इसका पंथ, वीस पंथ, गुमान पंथ, नानक पंथ, दाद पंथ और कबीर पंथ इत्यादि ये सब पंथ एक पृथ्वी के ऊपर हैं सो पृथिवी कुछ और है और आत्मा कुछ और है। जैन मतवाले, वैष्णव मतवाले, शैव मतवाले, वेदांत मतवाले, तेरापंथ मतवाले, वीसपंथ मतवाले तथा गुमानपंथ मतवाले थे सब मतवाले जिस मद को पीकर मतवाले हुए हैं सो मद कुछ और है और आत्मा कुछ और है।

**दोहा** - भेदज्ञान तैं भ्रम गयो, नहीं रही कुछ आस।
धर्मदास क्षुल्लक लिखै, अब तोड़ मोहकी फास।।

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

# १
# परमात्मभावना

**अब स्वयंसिद्ध परमात्मा के समान अनन्य भावना लिखते हैं :-**

**श्लोक** - सिद्धवस्तु वचो भक्त्या सिद्धान् प्रणमः सदा।
सिद्धकार्यात् शिवं प्राप्त सिद्धा ददतु नोऽव्यम्।।

श्री गुरु के उपदेश द्वारा और पाक को प्राप्त हुई काललब्धि के द्वारा मुझे यह निश्चय हो गया है कि मैं तन-मन-धन-वचन नहीं तथा तन-मन-धन-वचन का जितना रचना-विलास है वह भी मैं नहीं। पहले बहिरात्म दशा में मैं तन-मन-धन-वचन को अग्नि उष्णता के समान मेरा मानता था अब श्री गुरु के उपदेश द्वारा यह निश्चय हो गया है कि जैसे अंधकार में प्रकाश गुण नहीं है वैसे ही इन तन-मन-धन-वचनादिक में ज्ञान गुण नहीं। जैसे जल, तेल, और घी से भरे हुए कलश में सूर्य का प्रतिबिंब है। 'सूर्य प्रतिबिंब' उसे निश्चय हो जाये कि जिस प्रकार सूर्य आकाश में ऊपर है उसी प्रकार मैं इस घर में हूँ। वह (सूर्य) नहीं होता तो मैं (प्रतिबिंब) कहाँ से होता। मैं हूँ और वह नहीं वह बात बनती नहीं। मैं हूँ तो वह भी है, वह है तो मैं भी हूँ। मैं नहीं तो वह भी नहीं। जैसा वह है वैसा मैं हूँ तथा जैसा मैं हूँ वैसा वह है। यहाँ केवल

ज्ञानमयी वस्तु है उसमें अव्याप्त-अव्याप्तपना का गुण है। विशेष ऐसा है कि परवस्तु तन-मन-नधन-वचन जगत संसार में केवल ज्ञानमयी वस्तु व्याप्त है, परन्तु तन-मन-धन-वचनादिक से तत्स्वरूप तन्मयी नहीं। किन्तु आकाश के समान अलिप्त है। कलश फूटेगा तब मैं उसी में जाकर मिल जाऊँगा। अर्थात् जिसकी वस्तु उसी में जाकर मिल जाती है।

**भावार्थ :-** जाति में जाति मिल जाती है इत्यादि। सूर्य के प्रतिबिंब के दृष्टांत द्वारा मुझे यह निश्चय हो गया है कि तीन लोक के ऊपर केवल ज्ञानस्वरूपी स्वयंसिद्ध परमात्मा इस देहरूपी घट में मैं हूँ, वही मैं सिद्ध परमात्मा से अलग नहीं। जिस प्रकार घट के भीतर सूर्य का प्रतिबिंब है सो सूर्य से अलग नहीं उसी प्रकार मैं स्वयंसिद्ध परमात्मा से अलग नहीं। जैसा सिद्ध है वैसा ही मैं हूँ। सुवर्ण का कड़ा, अंगूठी सुवर्ण से अलग नहीं वैसे ही मैं सिद्ध परमात्मा से अलग नहीं।

जैसे सूर्य का प्रतिबिंब जल के कलश में हैं तो भी ऊपर आकाश में सूर्य है, फिर भी वह (प्रतिबिंब) उससे अपने को अभिन्न अनुभव से वैसे ही मैं इस देहरूपी घट में हूँ तो भी मैं सिद्ध से सूर्य-अंधकार के समान भिन्न नहीं हूँ। अर्थात् जैसे सूर्य से प्रकाश अलग नहीं वैसे ही मैं सिद्ध से अलग नहीं। सिद्ध अजीव नहीं, वह जीव है। मैं भी अजीव नहीं, जीव ही हूँ। सिद्ध भी स्वयं सिद्ध है और मैं जीव हूँ सो भी स्वयंसिद्ध ही हूँ।

जैसे अंधकार सूर्य का कर्ता-हर्ता नहीं और सूर्य है सो अंधकार का कर्ता-हर्ता नहीं। वैसे ही जीव का कर्ता-हर्ता अजीव नहीं और अजीव का कर्ता-हर्ता जीव नहीं। जीव-अजीव का परस्पर विरोध भेद है, प्रदेश भेद है, लक्ष्य-लक्षण का भेद है। निश्चय से कोई

किसीका कर्ता-हर्ता नहीं। यह भी निश्चय है कि सिद्ध भगवान् है सो अजीव नहीं और मैं भी अजीव नहीं।

जैसे अग्नि-उष्णता एक है वैसे जो जीव-अजीव को एक मानता है-जानता है सो मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा जीव है। अब उसी बहिरात्मा को यह निश्चय हो जावे कि जैसे सूर्य और अंधथकार का एक काल में तथा एक स्थान पर न मेल हुआ, न मेल है और न मेल होवेगा वैसे ही मैं जीव हूँ, सो जीव और अजीव का सूर्य और प्रकाश के समान न मेल हुआ, न है और न मेल होवेगा ऐसा जिसका निश्चय हो जावे वही जीव अंतरात्मा है।

अब मैं देहरूपी घट में बैठा हुआ, देह से सर्वथा प्रकार भिन्न जो सिद्ध है उनका गुण वर्णन करता हूँ। जैसे सिद्ध और उनके गुण हैं वैसा ही मैं और मेरे गुण हैं। परन्तु मैं अपने को छोड़कर उनके गुणों का वर्णन करता हूँ। अब सिद्ध भगवान के गुणों की महिमा करते हैं - जिन सिद्ध परमेष्ठी का ज्ञान ऐसा है कि जो सब ओर अनंत आकाश है जो कि लोक और अलोक के भेद से युक्त है। उसमें जिनका ज्ञान घनरूप होकर व्याप्त रहा है। और वे सिद्ध परमेष्ठी कैसे हैं, निद्रा, तंद्रा, आलस्य, भय, भ्रांति, राग, द्वेष, पीड़ा और संशयं इनसे रहित हैं तथा शोक, मोह, जरा, जन्म और मरण इत्यादि से रहित हैं। तथा कैसे हैं सिद्ध परमेष्ठी? क्षुधा, तृषा, खेद, मद, उन्माद, मूर्छा और मात्सर्य इनसे रहित हैं। तब बढ़ना-घटना, इससे रहित हैं। तथा जिनका वैभवकल्प से रहित है। तथा वे सिद्ध परमेष्ठी कैसे हैं ? निष्कलंक अर्थात् शरीररहित हैं, इन्द्रियरहित हैं और मनजनितविकल्पों से रहित हैं। तथा जिनके नवीन कर्म-कालिमा उत्पन्न नहीं उत्पन्न नहीं होती इस प्रकार निरंजन हैं। तथा अनन्त वीर्य को प्राप्त हैं, अतः अपने स्वभाव से चिगते

(हटते) नहीं। तथा सदाकाल आनंदरूप हैं - अनन्त सुख में विच्छेद नहीं। तथा कैसे हैं सिद्ध परमेष्ठी ? परम पद में स्थित हैं। तथा परम ज्योतिस्वरूप हैं अर्थात् केवलज्ञान प्रकाश स्वरूप हैं। तथा परिपूर्ण हैं - आत्मा के स्वरूप में कुछ घटती नहीं हुई तथा सनातन हैं - जैसे हैं सदा उसी परूप में नित्य हैं। तथा संसार-समुद्र से पार हैं - जिनके संसार संबंधी कुछ भी चेष्टा शेष नहीं रही। तथा कृतकृत्य हैं -जिन्हें करने के लिये कुछ भी बाकी नहीं रहा। तथा अचलरूप से स्थित हैं - जिनके प्रदेशों में संकोच-विकोचरूप क्रिया नहीं होती। तथा सिद्ध परमेष्ठी कैसे हैं ? सम्यक् रूप से तृप्त हैं - किसी प्रकार की तृष्णा नहीं है। तथा सदाकार लोक के शिखर भाग में स्थित हैं कहीं गमनागमन नहीं। तथा जिन सिद्ध परमेष्ठी के सुख आदि की लोक में कोई उपमा नहीं, जिसके समान उसे बतलाया जायेगा सिद्ध परमेष्ठी कैसे हैं ? श्री सद्गुरु कहते हैं - चल-अचल पदार्थों से पूरी तरह भरा हुआ जो तीन लोक है उसमें जो उपमान-उमपमेयपना देखने में-जानने में आता है, उसमें से कोई भी उन सिद्ध परमेष्ठी समान नहीं है इसलिये वे सिद्ध भगवान आप ही आपके उपमान-उपमेयस्वरूप हैं। इस कारण से उन सिद्ध परमेष्ठी के अनन्त गुणों का अनंतवाँ अंश भी तीन लोक में किसी भी पदार्थ के समान नहीं है। इसलिये उनकी समानता करने के लिये कोई पदार्थ समर्थ नहीं है ऐसा उपमान-उपमेयभाव सिद्धों का सिद्धों के साथ ही हैं।

जैसे आकाश और काल का अंत जानने के लिये कोई समर्थ नहीं है वैसे ही स्वभावरूप से परिणमे सिद्ध परमेष्ठी के गुणों का पार पाने के लिये कोई समर्थ नहीं है। आकाश, मेघ, सूर्य सर्पेन्द्र, चन्द्रमा, मेरू, पृथ्वी अग्नि, वायु, समुद्र, और कल्पवृक्ष इनके समस्त

गुणों के समूह का भी विचार करने पर वे परम गुरु सिद्ध परमेष्ठी के गुणों के उपमानपने को नहीं प्राप्त होते हैं। सिद्ध परमेष्ठी के गुणों का समूह कैसा है ? जिसका माहात्म्य वचनामार्ग के अगोचर है। वह जिनके अनन्त ज्ञान का विभव है ऐसे सर्वज्ञ के ज्ञान के ही गोचर है। परन्तु उसमें भी इतनी विशेषता है कि जो सर्वज्ञ परमेष्ठी के गुणों को जानते हैं वे भी समाधान स्वरूप होते हुए भी अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भले प्रकार कथन करते हैं तो भी कथन में उनके गुणों को पार नहीं पाया जा सकता है। क्योंकि वचनों की संख्या अल्प है और सिद्ध भगवान के गुण अनन्त हैं। इसलिये वचनों द्वारा उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

**भावार्थ :-** सिद्ध परमेष्ठी के पूर्ण गुणों का वर्णन जब सर्वज्ञ अरहंत की दिव्यध्वनि द्वारा नहीं किया जा सकता तब दूसरों की क्या कक्षा।

वे सिद्ध परमेष्ठी परमेश्वर देव तीन लोक के शिखर पर ज्ञान और सुखस्वरूप अमृत का पान करते हुए स्थित हैं, कहीं गमनागमन नहीं करते। ज्ञान-सुखामृत कैसा है ? समस्त तीन लोक का तिलकस्वरूप है, सर्वोपरि है, समस्त विषयों से रहित है, निर्द्वन्द है, प्रतिपक्ष से रहित है, नित्य-अविनाशी है, अतीन्द्रिय स्वाद-स्वरूप है, स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है, पराधीन नहीं है, उपमारहित है तथा विच्छेदरहित है। ऐसे ज्ञान और सुख को भोगते हुए स्थिरीभूत तीन लोक के शिखर पर बिराजमान हैं।

सिद्धात्मा सिद्धपरमेष्ठी देव शोभायमान तीन लोक के मस्तक पर सदा ही निवास करते हैं। कैसे हैं सिद्ध परमेष्ठी देव ? जिनका अनंत वीर्य स्वभाव से च्युत नहीं होता, जो दर्शन, ज्ञान और सुखरूप अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण हैं, संसाररूपी अंधकार को दूरकर सूर्यवत्

विराजते हैं, आत्मा के ही आलंबन से उत्पन्न हुए नित्य और उत्कृष्ट ऐसे शिव सुखरूपी समुद्रमें मग्न है, विकल्परहित हैं, अप्रतिहत महिमा से विभूषित है और आनंद के निवास हैं। ऐसे भगवान सिद्ध परमेष्ठी शाश्वत मोक्ष स्थानों में बिराजते हैं।

हे भगवान, सिद्ध परमेष्ठी परमात्मा तुम मेरी बिनती को सुनो। जैसे घट में आकाश है सो महाकाश से अलग नहीं वैसे ही मैं इस देहरूपी घट में हूँ सो प्रभु परमात्मा सिद्ध परमेष्ठी ! तुम से मैं अलग नहीं। देह में मैं हूँ परन्तु जैसा देह है वैसा मैं नहीं और जैसा मैं हूँ वैसा देह नहीं। मैं देह को जानता हूँ, परन्तु देह मुझे जानता नहीं। जब देह ही मुझे नहीं जानता तब देह के धर्म, जन्म, मरण, नामादिक भी मुझे नहीं जानते। तथा जिस वस्तु से यह देह बना है वह वस्तु भी मुझे नहीं जानती। तथा जिस वस्तु के निमित्त से यह देह विनष्ट हुए बाद परमाणुरूप होकर पृथ्वी-आकाशादिक में बिखर जावेगा वह वस्तु भी मुझे नहीं जानती। जहाँ अज्ञान अधिष्ठाता है, उसके ऊपर ज्ञान अधिष्ठाता संभव है। तथा जहाँ केवलज्ञान अधिष्ठाता है उसके ऊपर कोई भी अधिष्ठाता संभव नहीं। निश्चय से जैसे सूर्य को अंधकार की खबर नहीं तथा अंधकार को सूर्य की खबर नहीं। वैसे ही निश्चय से हे प्रभु परमात्मा ! तू केवलज्ञान रूपी सूर्य है, इसलिये तुझे यह जगत संसार नहीं जानता और तू इस मिथ्या भ्रमजाल से भरे हुए संसार को क्या जानेगा ? जैसे मास के मध्याह्न के सूर्य के सम्मुख अमावस्या की मध्यरात्रि का अंधकार नहीं वैसे ही हे परमात्मा सिद्ध परमेष्ठी ! तेरे सम्मुख यह जगत-संसार नहीं। जैसे आकाश में ऊपर सूर्य है, उसका प्रतिबिंब जल से भरे हुए घट में है वैसे ही तू तीन लोक के ऊपर केवल ज्ञानस्वरूपी है उसका मैं ज्ञानस्वरूपी प्रतिबिंब

इस देहरूपी घट में हूँ। अतः परमार्थ से मैं तुझसे भिन्न जाति का पदार्थ नहीं। मैं तेरा विचार नहीं करूँ, तेरा चिंतवन-ध्यान नहीं करूँ तो भी सोऽहम्, सोऽहम्, सोऽहम्, इसीके लिये इस देहरूपी घट में श्वास ऊपर जाता है और फिर नीचे आता हैं तथा नीचे से उसी प्रकार फिर ऊपर जाता है। यही सोऽहम् सोऽहम् सोऽहम् बिना किये ही तेरा जाप-ध्यान है।

**अब मनन लिखते हैं :-**

**ॐ नमः सिद्धेभ्यः**

जैसे अग्नि में उष्णता है वैसे ही जिस वस्तु में ज्ञान गुण है वही मैं हूँ। स्थूल-सूक्ष्म पुद्गल है सो मैं नहीं। जैसे सूर्य अंधकार सदृश नहीं और अंधकार सूर्य सदृश नहीं, वैसे ही केवलज्ञानी तो लोकालोक जगत जैसा नहीं और जैसा यह लोकालोक जगत है वैसा केवलज्ञानी नहीं। सो ही मैं केवलज्ञानी हूँ, अज्ञानी-अजीव-अचेतन तो मैं मूल से ही नहीं।

न तो कोई मेरी निंदा करता है और न कोई मेरी पूजा-स्तुति करता है, क्योंकि पूजा, स्तुति और निंदा देह और नाम की है सो मैं देह और नाम हूँ नहीं, क्योंकि देह को मैं जानता हूँ, परन्तु देह मुझे नहीं जानता।

और भी इस जन्म, मरण, नामादिक तथा बालकपना, युवापना, वृद्धपना, स्त्रीपुरुष और नपुंसकता ये सब देह के हैं और मैं देह हूँ नहीं, क्योंकि मैं देह को जानता हूँ, परन्तु देह मुझे नहीं जानता। जब देह ही मुझे नहीं जानता तब देह के भीतर जितने राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प तथा क्रोध, मान, माया और लोभादिक होते हैं वे भी मुझे नहीं जानते। जो-जो देखने योग्य यह रूप है सोतो कुछ और है, परन्तु मैं देखने-जाननेवाला और रूप नहीं हूँ, केवल देखने-

जाननेवाला ही हूँ। मैं ज्ञानस्वरूप ही हूँ, अन्य प्रकार नहीं हूँ।

पाँचों इन्द्रियों को और पाँचों इन्द्रियों के जितने विषय हैं उनको मैं जानता हूँ। परन्तु ये पाँचों इन्द्रिय और पाँचो इन्द्रियों के जितने विषय है वे मुझे जानते नहीं, इसलिये मैं किसके साथ वचनालाप करूँ। अर्थात् पाँचों इन्द्रियों द्वारा तो मूर्तिक पदार्थ ही ग्रहण योग्य है और वह जड़ है। जड़ वसतु में देखना-जानना गुण मूल से ही नहीं। इसलिये जड़ कुछ जानता नहीं और मैं ज्ञानमूर्ति हूँ तो जितना मूर्तिक आकारवाला पदार्थ-वस्तु है उससे रहित हूँ। इसलिये पाँचों इन्द्रियों का विषय मुझे ग्रहण करता नहीं और मुझे जानता भी नहीं, इसलिये मैं परस्पर वार्ता किससे करूँ।

मैं आदि नहीं, अंत नहीं और मध्य नहीं। मैं बंध नहीं और मुक्त नहीं, क्योंकि वस्तु के स्वभाव में बंध मुक्तपना संभव नहीं है। जैसे सूर्य अपने प्रकाश स्वभाव को न छोड़ता है और न ग्रहण करता है वैसे ही प्रकृत में समझना। मैं यंत्र, मंत्र और तंत्र भी नहीं क्योंकि ये यंत्र, मंत्र, तंत्र अचेतन हैं और मैं चेतन हूँ। जैसे सूर्य और प्रकाश का मेल है वैसे चेतन और अचेतन का मेल नहीं। जैसे सूर्य और अंधकार में अंतर है वैसे ही चेतन और अचेतन में अंतर है। 'अहं' है सो मैं नहीं, परन्तु 'अहं' पद बिना व्यवहार बनता नहीं। क्योंकि 'अहं' पद द्वारा मुझे मेरा मेरे भीतर अनुभव होता है। लोक मुझे समझाता है, संबोधता है तथा मैं दूसरों को समझाता हूँ, संबोधता हूँ ऐसा यह द्विधाभाव है सो भी भ्रम का स्थान है क्योंकि मैं तो पाप-पुण्य से सर्वथा प्रकार भिन्न हूँ। कारण कि अजीव-अचेतन-जड़ वस्तु में तो ज्ञान गुण मूल से ही नहीं, जैसे अंधकार में प्रकाश गुण नहीं वैसे ही अजीव-अचेतन-जड़ वस्तु में ज्ञान गुण का लेश भी नहीं तथा जीव-चेतन में ज्ञान गुण ऐसा

अंतर्लीन हो रहा है जैसा अग्नि में उष्णता और सूर्य में प्रकाश अंतर्लीन हो रहा है। इसलिये समझना और समझाना दोनों ही विभ्रम के स्थान हैं। जैसे सूर्य से अंधकार अलग है वैसे ही मुझसे जितने पदार्थ अलग है उनको मैं न त्यागता हूँ और न ग्रहण करता हूँ। तथा जैसे सूर्य से प्रकाशादिक अलग नहीं वैसे ही चेतन ज्ञानादि गुण मुझसे अलग नहीं, अतः मैं क्या त्यागूँ और क्या ग्रहण करूँ। परमार्थ से मैं एक आप ही से जानने योग्य हूँ। अतः मैं परस्पर किससे देने लेने का व्यवहार करूँ।

शरीर तो जड़मूल से ही अशुद्ध है, वह तो कदाचित् विशुद्ध होने का नहीं तथा मैं शरीर को देखने-जाननेवाला ज्ञाता-दृष्टा ज्ञानी हूँ। जैसा शरीर है वैसा मैं हूँ नहीं अब मैं किसको शुद्ध करूँ और किसको अशुद्ध करूँ। सूर्य तो अंधकार जैसा नहीं और अंधकार सूर्य जैसा नहीं, इसलिये शुद्ध-अशुद्ध करना, मानना दोनों ही विभ्रम हैं।

मुर्दा तो जीते हुए को नहीं मारता और जो जीता है वह मरे को क्या मारे, इसलिये मैं किसको जिलाऊँ और किसको मारूँ? (यह मेरे अधिकार में नहीं है), जो मारने और जिलाने का संकल्प-भाव करता है वह उसका वैसा ही फल भोगता है। मैं मारने-जिलाने से अलग हूँ जैसे अंधकार से सूर्य अलग है।

यह स्त्री है, यह पुरुष है, और यह नपुंसक है। यह एक है, यह सौ है और यह बहुत है। इस प्रकार लिंग और संख्या की बुद्धि-विकल्प का स्थान मैं नहीं। क्योंकि जो आप द्वारा आपको आपमें जाननेवाला है वही मैं हूँ।

यह तन-मन-धन-शरीरादिक ज्ञानस्वरूप मुझे न जानता और न देखता है, इसलिये न कोई मेरा मित्र है और न कोई मेरा शत्रु है। जैसे मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ ऐसा ही मेरे सदृश कोई और है

वह भी मेरा न शत्रु है और न मित्र है। सूर्य को सूर्य से न विरुद्धता है और न भिन्नता। शक्ति की अपेक्षा कम-अधिक में परस्पर विरोधादिक संभव है।

जिस वस्तु के द्वारा प्रकाशस्वरूप ज्ञानज्योति परमात्मा की मुझे खबर हुई सो तो मैं हूँ नहीं, क्योंकि सूर्य के तेज से सूर्य दिखलाई देता है वैसे ही परमात्मा के तेज से परमात्मा दिखलाई देता है।

यह मेरे निश्चय है कि जैसा मैं हूँ वैसा और नहीं तथा जैसा कोई और है वैसा मैं नहीं। जैसा सूर्य है वैसा अंधकार नहीं और जैसा अंधकार है वैसा सूर्य नहीं। वैसा ही जैसा मैं हूँ वैसा और नहीं और जैसा और है वैसा मैं नहीं।

व्यवहारनय से देखने पर जैसे अंधकार की अपेक्षा प्रकाश है और प्रकाश की अपेक्षा अंधकार है, वैसे ही बंध की अपेक्षा मोक्ष है और मोक्ष की अपेक्षा बंध है। अपेक्षा रहित होकर केवलज्ञान स्वरूपी परमात्मा को देखिए तो न बंध है और न मोक्ष है। अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं, उनका पाँच होगा और न सात होगा, छह के छह ही रहते हैं। इसीलिये बंध और भी विभ्रम है। मैं तो बंध और मोक्ष से सर्वथा प्रकार भिन्न हूँ। कोई पर विद्या पदारूढ़ पंडित बंध और मोक्ष मानता है तो भले मानो। मैं तो अमूर्तिक-निराकार मूल से ही हूँ। मेरे कदाचित् भी बंध और मोक्ष नहीं।

मैं सर्वनाम को कहनेवाला हूँ तो भी मेरा नाम नहीं तथा सर्वनाम को कहनेवाला नहीं हूँ तो भी मेरा नाम नहीं। अर्थात् जितना नाम है वह सब आकार-निराकार वस्तुका है, सो मैं तो आकार-निराकार से सर्वथा प्रकार भिन्न हूँ।

सद्गुरु के उपदेश द्वारा यह निश्चय हो गया कि तन-मन-

धन-वचन तथा लोकालोक और लोकालोक में जितने पदार्थ है सो मैं नहीं, बाकी कोई है सो ही मैं हूँ , मैं हूँ। जैसे सिद्ध परमेष्ठी आत्मस्वरूप है वैसे ही परमात्मा परमेश्वरस्वरूप मैं हूँ। कथनमात्र से सिद्ध और मैं दो हूँ, निश्चय दृष्टि से सिद्ध और मैं अभेद वस्तु हूँ। जैसे सुवर्ण और सुवर्ण का कटकादिक कथनमात्र दो हैं, परन्तु दोनों ही सुवर्ण से भिन्न वस्तु नहीं वैसे ही सिद्ध और मैं भिन्न नहीं। इसलिये किसकी उपासना करूँ और मेरी कौन उपासना करे।

जैसे सूर्य से अंधकार अलग है वैसे ही मेरे से जो अलग है उसका मैं क्या नाम स्मरण करूँ। तथा जैसे सूर्य से प्रकाश अलग नहीं वैसे ही मुझसे जो अलग नहीं उसका भी मैं क्या नाम स्मरण करूँ। जो कुछ मैं दूसरे को बतलाना चाहता हूँ वह तो मैं आत्मा नहीं हूँ। तथा जो मैं आत्मा हूँ तो दूसरे के द्वारा ग्रहण करने योग्य नहीं हूँ। इसलिये मुझे जो दूसरों को संबोधन का उद्यम है सो वृथा है। आत्मा आप द्वारा ही जाना जाता है, पर का कहना, सुनना निमित्तमात्र है, इसलिये इस विषय में आग्रह करना वृथा है, क्योंकि जो तन-मन-धन वचन से सर्वथा प्रकार भिन्न है उसे कौन समझाये। तन-मन-धन-वचन में और शुद्ध परमात्मा में सूर्य और अंधकार के समान अंतर है। न वह उनसे मिलता है और न वे उससे मिलते हैं जो जिससे अलग है वह उससे अलग ही है।

**कवित्त** - लाल वस्त्र पहरे से देह तो न लाल होय,
लाल देह भये हंस लाल तो न मानिये।
वस्त्र के पुराना भये देह न पुरानी होय,

देह पुरानी भये हंस जीरन न मानिये।।
वस्त्र के नाश से कुछ देह को न नाश होय,
देह नाश भये हंस नाश न बखानिये।
देह सर्व पुद्गल की चिदानन्द ज्ञानमयी,
दो हू भिन्न-भिन्न, रूप भय उर न आनिये।।

जैसे जिस घर में अग्नि लगेगी, वह घर तो जलेगा, परन्तु घर के भीतर बाहर आकाश है वह कदाचित् भी भस्म होनेवाला नहीं। वैसे ही मैं ज्ञानस्वरूपी परमात्मा हूँ सो देह के भीतर-बाहर मात्र ज्ञाता-दृष्टा हूँ। सो देह का नाश होनेपर मेरा नाश न हुआ, न होगा और न है।

मैं जात नहीं, इसलिये मेरा जन्म-मरण कहाँ से होगा ? मैं प्राण नहीं, इसलिये मुझे क्षुधा-तृषा कहाँ से लगेगी ? मैं चित्त नहीं, इसलिये मोह-शोक किससे होगा ? मैं अजीव-अचेतन वस्तु का कर्ता नहीं, इसलिये मेरा बंध मोक्ष कहाँ से होगा ? मेरा मरण तो है ही नहीं, इसलिये मुझे भय कहाँ से होगा ? मेरे रोग तो हैं नहीं, इसलिये मुझे दुःख कहाँ से होगा ? मैं बालक नहीं, मैं युवा नहीं और मैं वृद्ध नहीं, क्योंकि ये बालक आदि अवस्थाएँ पुद्गल की हैं। मेरी नहीं।

मैं तन-मन-धन आदि मूल से ही नहीं, परन्तु अनहोना सा बनकर तन-मन-धन-वचन से अतीत अनुभव की भावना करता हूँ। मेरा यह उपकार है सो मैं के द्वारा मेरा मनन प्रत्यदर है सो होता हैं। 'मैं' है सो अरहंत पद के साथ लगाना, तथा 'मैं' के प्रथम-मध्य-अंत से अतीत है सो सिद्धपद के साथ लगाना। नव तत्त्वगत मैं अरूपी महाधाम हूँ।

जो चिंतवन से, दूसरे भावों से, संकल्प-विकल्प से तथा तन-

मन-धन-वचन से सर्वथा प्रकार भिन्न है वही मैं हूँ। मैं शरीर के भीतर-बाहर आकाशादिक से ऐसा अलग हूँ जैसे सूर्य से अंधकार अलग है।

तनता मनता वचनता जड़ता जड़ से मेल।
लघुता गुरुता गमनता, यह अजीव का खेल।।१।।

सो ही मैं अजीव और अजीव का खेल मूल से ही नहीं। मैं अजीव और अजीव के खेल से ऐसे अलग हूँ जैसे अंधकार से सूर्य अलग है। जन्म-मरण नामादिक उसका है, मेरा नहीं। बालकपन, युवापन, वृद्धपन, क्षीणपन, पुष्टपन, स्त्रीपन, पुरुषपन और नपुंसकपन आदि उसका है, मेरा नहीं। संकल्प, विकल्प, हर्ष, शोक, राग, द्वेष, सुख, दुःख यह मन का है, मेरा नहीं, वचनादिक धर्म अजीव का है, मेरा नहीं। अजीव का मेल अजीव के साथ है। लघुता, गुरुता, गमनता यह अजीव का खेल है, मेरा नहीं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये छह हैं। उनमें प्रथम मैं तो जीव हूँ, बाकी पाँच अजीव हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, उनमें प्रथम तो मैं जीव हूँ, बाकी छह अजीव हैं। जीव और अजीव में सूर्य और अंधकार जितना अंतर है। अजीव पदार्थ जीव को न तो जानता है और न देखता है किन्तु जैसे सूर्य में प्रकाशादिक की शक्ति है वैसे ही जीव में देखने-जानने की शक्ति है। प्रत्येक शक्ति का अपने व्यक्ति (शक्तिमान) के साथ सूर्य और प्रकाश के समान तथा अग्नि उष्णता के समान मेल है। अर्थात् जो द्रव्य जैसा है उसीके अनुरूप उसके गुण पर्याय होते हैं।

हम न किसी का, कोई न हमारा।
यह निश्चय कर, देखा सारा।।१।।

जितनी रचना सुनने में आती है और जितनी देखने में आती है वह सब स्व-पर की माया है। किन्तु मैं जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या इन चार अवस्थाओं से सर्वथा प्रकार भिन्न हूँ। तन-मन-धन-वचन का रचना विलास तथा तन-मन-धनादिक मुझे दिखलाई देता है सो ऐसा दिखलाई देता है जैसे आकाश में मृगजल तथा आकाश में नीलरंग दिखलाई दैता है।

जो 'वह परमात्मा और यह मेरा आत्मा' ऐसा भेद मानता है वह मूर्ख बहिरात्मा है। जैसे सूर्य तो अंधकार जैसा नहीं और अंधकार सूर्य जैसा नहीं वैसे ही परमात्मा तो लोकालोक-जगत जैसा नहीं और जगत लोकालोक परमात्मा जैसा नहीं। जैसे सूर्य से प्रकाशादिक भिन्न नहीं अथवा जैसे कटक-मुंदरी सुवर्ण से अलग नहीं वैसे ही मैं परमात्मा से अलग नहीं। जैसे अग्नि से उष्णता अलग नहीं हो सकती वैसे ही मेरे स्वरूप से ज्ञान गुण अलग नहीं हो सकता। जैसे जितने दूर तक दूध फैल रहा है उतने दूर तक घी फैल रहा है वैसे जितने दूर तक यह लोकालोक फैल रहा है उतने दूर तक मेरा ज्ञान गुण फैल (जानने की अपेक्षा) रहा है। जैसे सूर्य का प्रकाश सर्व पृथिवी के ऊपर फैल रहा है वैसे ही मेरा केवलज्ञान गुण लोकालोक-जगत संसार के ऊपर फैल रहा है- ऐसा मैं हूँ।

जैसे सूर्य से अंधकारी रात्रि अलग है वैसे ही मेरे स्वरूप से पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर ये चार दिशायें, उनके चारों कोने तथा ऊपर आकाश नीचे पाताल ये दशों दिशायें अलग हैं। दशों दिशायें और दशों दिशाओं के भीतर-बाहर जितनी रचना है वह तो कुछ और है और मैं कुछ और ही हूँ। मैं अनोखी, अनुपम, अपूर्व, अनंत, अनाम वस्तु हूँ। मंत्र, तंत्र, यंत्र तथा तन-मन-धन-वचन यह वस्तु

अचेतन है। जैसे सूर्य के भीतर अंधकार नहीं वैसे ही इन मंत्र, तंत्र, यंत्र और तन-मन-धन-वचन के भीतर ज्ञान गुण नहीं। सूर्य और प्रकाश का जैसा मेल है वैसा ज्ञान और अज्ञान का न मेल हुआ न होगा, और न है। मैं-तू-यह-वह तथा तन-मन-धन-वचनादिक से जो सर्वथा प्रकार भिन्न है सो ही सोऽहम् यह सोऽहम् है तो कहने में आया, इसलिये शब्द है और शब्द है सो अचेतन वस्तु है, उसमें ज्ञान गुण नहीं। इस कारण सोऽहं शब्द है सो कुछ और है तथा शब्दातीत सोऽहम् द्वारा अनुभव में आता है सो कुछ और है। अग्नि चूले में यह शब्द-वचन मुख में है। अब यहाँ कोई अग्नि का लालची अग्नि को मुख में, वचन में अथवा वचन के विलास में खोजेगा तो क्या अग्नि की प्राप्ति होगी, अर्थात् नहीं होगी। मुख में और वचन में अग्नि की खोज करना वृथा है। वैसे ही केवलज्ञान स्वरूप वस्तु वचन में तथा वचनमय द्रव्यश्रुत में नहीं है। वही पद्मनिन्द पंचविंशतिका में कहा है :-

मनसो चिन्त्यं वाचामगोचरं यन्महस्तनोर्भिन्तम्।

जो ज्ञान स्वरूप तेज शरीर से भिन्न है तथा मन और वचन के अगोचर है।

जो केवलज्ञान स्वरूपी परम ज्योति परमात्मा वस्तु है वह मन के विचार अर्थात् चिंतवन की अविषय है, जिसका वचन से कथन नहीं किया जा सकता है तथा हाथ से वह ज्ञान वस्तु पकड़ी नहीं जा सकती है ऐसी अपूर्व वस्तु है।

परद्रव्य परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा मैं नहीं हूँ, एवं द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा मेरे में मैं हूँ तथा एक ही काल में स्व-पर चतुष्टय की अपेक्षा मैं कथंचित् अवक्तव्य हूँ. द्रव्यदृष्टि से मैं एक हूँ और पर्यायदृष्टि से अनेक हूँ। इत्यादि

जितने नय विकल्प हैं उतने ही वाद-विवाद हैं। और जितने वाद-विवाद हैं उतने ही मिथ्यावाद हैं। इसिलये स्थिरस्वरूप मेरा यह निश्चय है कि तन,मन,धन,वचन, ये कुछ और हैं और तन, मन, धन, वचन से सर्वथा प्रकार भिन्न मैं कुछ और हूँ, मेरा यथार्थ ज्ञान यही है। जीव और अजीव इन दो वस्तुओं का खेल है। इसमें यह पंडिताई की अधिकता है कि जीव की अपेक्षा उसका प्रतिपक्ष अजीव है और अजीव की अपेक्षा उसका प्रतिपक्ष जीव है। अपेक्षा रहित होकर वस्तु को देखा जाय तो न जीव है और न अजीव है, वस्तु अपने स्वभाव को लिये हुए जैसी है वैसी ही है।

**दोहा** - वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव ताकौ नाम।।१।।
कहना सुनना देखना, और बोलना बात।
ये सब ही संसार में, तूं सांच मान ले भ्रात।।२।।
समझ गयो समझे नहीं, अब क्या कहना सार।
धर्मदास क्षुल्लक लियो, सर्व जगत को पार।।३।।
इत्यलम्, विश्राम, पूर्ण संतोष।

'मैं' यह शब्द है। और शब्द अचेतन है-अजीव है, इसलिये 'मैं' मूल से ही नहीं हूँ। परन्तु 'मैं' द्वारा मेरा मनन-अनुभव होता है, इसलिये अनहोना सा बनकर मैं मेरा मनन करता हूँ - मैं भीतर स्थित नहीं हूँ, बाहर भी स्थित नहीं हूँ, तथा दिशा-विदिशा में भी स्थित नहीं हूँ। मैं लोक-अलोक भी नहीं हूँ, स्थूल-सूक्ष्म भी नहीं हूँ, मैं स्त्री-पुरुष-नपुंसक भी नहीं हूँ, मैं छोटा-बड़ा भी नहीं हूँ, मैं हलका-भारी भी नहीं हूँ, मेरा नाम भी नहीं और अनाम भी नहीं, मैं गुप्त-प्रकट भी नहीं, मैं मंत्र-तंत्र-यंत्र नहीं, मैं मूर्त-अमूर्त नहीं। अमूर्त तो धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य है, सो

वे अजीव-अचेतन हैं और मूर्त पुद्गल द्रव्य है सो वह भी अजीव-अचेतन है। इस अपेक्षा से मैं मूर्त-अमूर्त नहीं। मैं कर्म-अकर्म नहीं, मैं बंध-मुक्त नहीं, मैं शुद्ध-अशुद्ध नहीं, मैं सिद्ध-असिद्ध नहीं, मैं आदि-अंत-मध्य नहीं, मैं पर नहीं, मैं शून्य-अशून्य नहीं, वचन से और मन से मैं प्रारंभ से ही अलग हूँ, मैं वस्तु-अवस्तु नहीं, विधि-निषेध से मैं सर्वथा प्रकार अलग हूँ। मैं अस्ति-नास्ति नहीं, मैं लोक-अलोक से अलग हूँ, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनसे भी मैं अलग हूँ, मैं जीव-अजीव नहीं, मैं चेतन-अचेतन नहीं, मैं भाव-अभाव नहीं, मैं पंडित-मूर्ख नहीं, मैं धनवान नहीं, मैं दरिद्री भी नहीं, मैं गुरु-शिष्य नहीं, मैं ज्ञानी-अज्ञानी नहीं, अस्ति-नास्ति भी मैं नहीं, मैं बाल-वृद्ध-युवा नहीं, आदि-अंत-मध्य से मैं सर्वथा प्रकार अलग हूँ। दिखलाई देता है और नहीं दिखलाई देता है-जागृत और स्वप्न में जितनी रचना मुझे दिखलाई देती है और जो नहीं दिखलाई देती है वह सब मेरे सदृश नहीं, और मैं उस सदृश नहीं। यह रचना वस्तु कुछ और है और मैं कुछ और हूँ। सूर्य और प्रकाश के मेल के समान उनका और मेरा मेल नहीं। उसमें और मुझमें सूर्य और अंधकार के समान अंतर है। अनादि से ही वह रचना वस्तु और मैं अलग-अलग हूँ।

जागृत में क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है सो भी मैं नहीं और स्वप्न में जैसा है वैसा क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है ज्ञात होता है सो भी मैं नहीं, अनादि से ही वह मैं नहीं। जागृत-स्वप्न में वह क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है सो भी मैं नहीं। उस क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास के बाहर-भीतर-मध्य कोई रचना वस्तु है सो भी मैं नहीं तथा उस जागृत स्वप्न की दोनों अवस्थाओं में क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है, उसको कई आदि-अंत-मध्य है सो भी मैं नहीं।

सो क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है उसी के जन्म-मरण नामादिक हैं, मेरे नहीं। मैं अनादि से ही नाम-अनाम नहीं हूँ, नहीं होऊँगा, और न हुआ था।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये तो अमूर्त, अनाकार और निष्क्रिय स्वभाव में स्थित हैं, अचेतन-अजीव हैं, सो ये तो अज्ञानी हैं। इन चारों द्रव्यों में ज्ञान गुण का लेश भी नहीं। तथा पुद्गल भी अजीव-अचेतन है जैसे अग्नि और उष्णता का मेल है वैसा चेतन-अचेतन का मेल नहीं। किसी भी प्रकार चेतन-अचेतन का तादात्म्य स्वरूप संबंध नहीं, क्योंकि चेतन और अचेतन अग्नि और उष्णता के समान न एक हैं, न एक होंगे और न एक थे। चेतन का कर्ता-हर्ता अचेतन नहीं अचेतन का कर्ता-हर्ता चेतन नहीं। जैसे सूर्य और अंधकार का न मेल है, न होगा और न हुआ था वैसे ही चेतन और अचेतनका मेल न है, न होगा और न हुआ था।

लोक और अलोक (तथा) लोक और अलोक के बाहर, भीतर, और मध्य जितनी रचना-वस्तु है वे सब चेतन-अचेतन हैं और मैं हूँ सो लोकालोक भी नहीं और चेतन-अचेतन भी नहीं। मैं यह शब्द वचन है सो यह शब्द-वचन अजीव-अचेतन है सो भी मैं नहीं।

पहले बहिरात्म दशा में कान द्वारा मैंने ऐसा सुना था कि जो सदा जागती ज्योति है सो ही परमब्रह्म परमात्मा सिद्ध परमेष्ठी है। अब भी गुरु के उपदेश द्वारा, परिपक्व हुई मेरी काललब्धि द्वारा तथा स्वानुभव द्वारा मेरे विषय में मुझे यह निश्चय हो गया है कि पहले कर्ण द्वारा जिस जागती ज्योति के विषय में सुना था सो ही मैं हूँ, क्योंकि मैं तो स्वप्न में भी नहीं सोता हूँ। यदि मैं सोता होता तो मुझे स्वप्न की कैसे खबर होती - कैसे जानता। तथा मेरे समक्ष निद्रा आती है और जाती है, इसीलिये मुझे मालूम

होता है - मैं जानता हूँ कि निद्रा आती है भाई नींद उचर गई भाई। नींद में ज्ञान गुण नहीं, चेतन-जीव में ज्ञान गुण है।

सोते हुए को स्वप्न आता है, सदाकाल जागृत को स्वप्न नहीं आता, क्योंकि वह स्वप्न की रचना को देखता-जानता है। सोता हुआ स्वप्न की रचना को न जानता है और न देखता है। जो सदाकाल जागता है वह स्वप्न की रचना को साक्षीदार के समान देखता-जानता है। जैसा अग्नि और उष्णता में मेल है वैसा जागृत का और स्वप्न की रचना का मेल नहीं। स्वप्न और स्वप्न की माया कुछ और है और जागृत कुछ और है। जागृत के समक्ष स्वप्न की माया होती है और बिगड़ जाती है। तथा जो जागृत है वह न होता है और न बिगड़ता है। जैसा है वैसा ही है, जैसा का तैसा है, सो है ही है।

स्वप्न में जो लिखता है, पढ़ता है, खाता है, पीता है, बोलता है, चलता है, डरता है, डराता है, मरता है, मारता है, काम-कुशील, लेन-देन, शुभाशुभ कर्मादिक करता है, कराता है उस सबको जागृत जानता है-देखता है। जागृत है सो आपको भी जानता है और आपसे जो सदाकाल अलग है उसको भी जानता है। वह इससे भी अधिक जागृत है सो अब क्या जगे। जागृत है सो ही स्वप्न की रचना को देखता-जानता है। देखता-जानता ही है सो अब और नया क्या देखे, क्या जाने ! स्वप्न जो बोलता-चलता, खाता-पीता, मरता-मारता, शुभाशुभ कर्म करता-कराता है उसको जागृत देखता-जानता ही है। इसलिये वह जागृत न बोलता है, न खाता है, न पीता है, न मरता है, न मारता है, न शुभाशुभ कर्म करता है और न कराता है, केवल जागृत है, सो देखता-जानता ही है। तमाशा करनेवाले को मजा नहीं, जो तमाशा देखता-

जानता उसको मजा है। नाचनेवाले को मजा नहीं, जो नाच को देखता-जानता है उसको मजा है।

मैं नहीं; परन्तु मैं शब्द द्वारा मैं मनन करता हूँ। मैं 'स्वप्न भी नहीं और स्वप्न की रचना भी नहीं, मैं सुप्त और जागृत भी नहीं, शून्य-अशून्य तथा अस्ति-नास्ति भी नहीं। **द्वैत** है सो संसार है।

आगे **द्वैत** का स्वरूप और भी स्पष्ट करते हैं। **पद्मनन्दि पंचविंशतिका** में कहा है :-

बन्ध-मोक्षौ रति-द्वेषों कर्मत्मानौ शुभाशुभौ।
इति द्वैताश्रिता बुद्धिसिद्धिर पिधीयते।।१।।

बंध और मोक्ष, राग और द्वेष, कर्म और आत्मा तथा शुभ और अशुभ इस प्रकार जो द्वैत के आश्रित बुद्धि है सो असिद्धि है। आपके निज शुद्ध अद्वैत स्वरूप को रोकनेवाली है।

**भावार्थ :-** बंध और मोक्ष से लेकर जितना द्वैत भाव है सो सब संसार है।

यह लोक-अलोक है और इस लोक-अलोक में जितनी रचना दिखलाई देती है और नहीं दिखलाई देती है वह सब पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच है उनका ही यह प्रपंच है। जैसे अग्नि और उष्णता एक है वैसे ही जो आपको और इस प्रपंच को एक मानता है-जानता है सो संसारी जीव है। तथा जिस जीव को यह निश्चय हो गया कि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच पदार्थ अजीव-अचेतन-जड़ हैं। उनमें पुद्गल मूर्त है। शेष चार अमूर्त निष्क्रिय हैं। इन पाँचो के प्रपंच का और मेरा अग्नि और उष्णता के समान मेल नहीं हुआ, न होगा और न है। वह जीव संसारी नहीं अर्थात् वह जीव सिद्ध है। अर्थात् सभी जीव सिद्ध हैं। परन्तु पहले लिख आये पुद्गल, धर्म, अधर्म,

आकाश और काल ये पाँच को और आपको अग्नि और उष्णता के समान जो एक मानता है-जानता है वह तो घानी में पिलते हुए तिली के तेल के समान दुःखी संसारी जीव है, परन्तु पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव पदार्थों को और आपको सूर्य और अंधकार के समान आनादिसे ही अलग मानता-जानता है वह जीव अपने स्वरूप में लीन हुआ सदा सुखी है।

जीव है सो कभी भी अजीव नहीं हुआ, न होगा और न है। तथा अजीव है सो कभी भी जीव नहीं हुआ, न होगा और न है। जैसे अग्नि में उष्णता है वैसे ही जीव में ज्ञान गुण हैं तथा जैसे नमक की डली में क्षारपन है वैसे ही अजीव वस्तु में अज्ञान है। अर्थात् जीव और अजीव जड़मूल से ही अलग-अलग हैं। जैसे सूर्य और प्रकाश मिले हुए एक हैं वैसे जीव और अजीव एक नहीं, किन्तु सूर्य और अंधकार के समान अलग-अलग हैं।

देखना-जानना यह जीव का निज गुण है। स्वप्न में जितनी रचना दिखलाई देती है वह और नहीं दिखलाई देती है वह, जागृत में जितनी रचना दिखलाई देती है वह और नहीं दिखलाई देती है वह, पाँच प्रकार की निद्रा, पाँच प्रकार का शरीर है वह तथा पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये सब अजीव हैं। कारण कि जैसे सूर्य में प्रकाश है वैसे ही जिस वस्तु में ज्ञान है वह जीव है बाकी सब अजीव हैं यह निश्चय है। सो मैं अजीव नहीं हुआ, न होऊँगा और न हूँ।

तथा यह जो ऊपर बोलता है-विचारता है वह भी मैं नहीं। तथा जो भीतर बोलता है-विचारता है वह भी मैं नहीं। मैं किसीके ही कहने सुनने में, देखने-जानने में विचार-चिंतवन में, पकड़ने में नहीं आया, नहीं आऊँगा और नहीं आता हूँ ऐसा जो कोई है सो

मैं ही हूँ।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच हैं सो अजीव हैं। इनमें तो देखने-जानने को गुण जड़-मूल से ही नहीं। इसलिये ये पाँच तो मेरे स्वरूप को न देखते हैं-न जानते हैं। अब बोलो, इन पाँच को छोड़कर अन्य कौन मुझे देखता है-मुझे जानता है। तथा देखने-जाननेवाला, देखने-जाननेवाले से सूर्य और अंधकार के समान अलग नहीं। कम अधिक होवे तो अलग कहने में आवे।

जो सबका साक्षीदार है वह कर्म का कर्ता नहीं। साक्षीदार है सो देखना-जानता है। तू, मैं, यह, वह ये शब्द वचन हैं।

**दोहा** - तनता मनता वचनता जड़ता जड़ते मेल।
लघुता गुरुता गमनता, यह अजीव का खेल।।१।।

जीव और अजीव का लक्षण-स्वरूप किसी प्रकार एक नहीं होगा, न हुआ था और न है। परन्तु बहिरात्मा जीव को इसकी खबर नहीं, इसलिये दुःखी है, यह सत्य है।

यह बात प्रसिद्ध है कि जिसकी जैसी मति उसकी वैसी गति। तब जिसकी ऐसी मति है कि मैं जड़-मूल से ही अजीव नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था। मैं स्पर्श, रस, गंध और वर्ण स्वरूप पुद्गल नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था। मैं पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तैजस और कार्माण ये पाँच प्रकार का शरीर है सो अचेतन-अजीव है, सो मैं नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था। तथा शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम,छाया, आत और उद्योत ये दश पुद्गल की पर्यायें अचेतन-अजीव हैं सो मैं नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था।

**दोहा** - तनता मनता वचनता जड़ता जड़ते मेल।

लघुता गुरुता गमनता, यह अजीव का खेल।।१।।

सो मैं अजीव न हूँ, न होऊँगा और न था (वही सुखी है)। मैं हूँ सो मैं ही हूँ और पर है सो पर ही है। मैं, तू, यह, वह ऐसा बोलना शब्द-वचन है सो यह अजीव-अचेतन है।

तथा जिसका बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, गणधरादिक सिद्ध-परमेष्ठी ऐसा नाम लेकर ध्यान करते हैं वे सिद्ध परमेष्ठी पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पाँच अजीवरूप न हुए, न होंगे और न हैं। शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूलत, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत ये दश पुद्गल की पर्यायें अजीव-अचेतन हैं सो सिद्ध परमेष्ठी कभी अजीव-अचेतन न हुए, न होंगे और न हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पाँच प्रकार के शरीर अजीव-अचेतन हैं, सो सिद्ध परमेष्ठी अजीव-अचेतन न हुए, न होंगे और न हैं। तथा वे सिद्ध परमेष्ठी आठ कर्म न हुए, न होंगे और न हैं। मूर्तिक तो पुद्गल द्रव्य हैं तथा अमूर्तिक धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, लोकाकाश-अलोकाकाश द्रव्य और काल द्रव्य है, सो वे अजीव-अचेतन द्रव्य हैं, इसलिये वे सिद्ध मूर्त-अमूर्त न हुए, न होंगे और न हैं। तथा वे सिद्ध जड़-मूल से ही अजीव न हैं, न होंगे, और न हुए थे। मेरे भी यही निश्चय है। मैं भी जड़-मूल से ही न अजीव हूँ, न होऊँगा और न हुआ था। तथा वे सिद्ध अनादिसे ही स्वयंसिद्ध अकृत्रिम जीव हैं और मैं भी जीव हूँ। अर्थात् मैं अजीव नहीं, जीव ही हूँ, इसलिये मैं भी स्वयंसिद्ध अकृत्रिम हूँ।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये छह हैं, इनमें पाँच तो अजीव हैं और प्रथम एक जीव है। इसमें ज्ञान गुण ऐसा प्रविष्ट हो रहा है जैसे अग्नि में उष्णता प्रविष्ट हो रही है।

तथा पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये पाँच द्रव्य और इनकी रचना-विलास-विस्तीर्णता जितनी कुछ है वह सब अजीव है। इनमें और आप में अग्नि और उष्णता के समान जो एकता मानता है-जानता है वह अजीव बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। तथा इन पाँच अजीव-अचेतन द्रव्यों का और आपका जो दूध और घी के समान तथा तिल और तेल के समान मेल मानता है-जानता है वह जीव अंतरात्मा है।

तथा जो आपको परमार्थ से जीव मानता है तथा सूर्य से जैसे प्रकाश अभिन्न है वैसे ही आप से अभिन्न देखने-जानने का गुण जानता-मानता है तथा जिसके यह अचल निश्चय श्रद्धा हो गई है कि पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये पाँच अजीव-अचेतन हैं। इनका और मेरा अग्नि और उष्णता के समान न मेल हैं, न होगा और न हुआ था। मैं हूँ सो मैं ही हूँ और अजीव है सो अजीव ही है। ज्ञान गुण मुझमें हैं, अजीव में नहीं, इसलिये प्रारंभ जड़-मूल से ही मैं आदि-अंत-मध्य, भीतर-बाहर, लोकालोक-जगत संसार होता हुआ तथा न होता हुआ जैसा था वैसा ही ज्ञानस्वरूपी अमूर्तिक आत्मा हूँ सो तो भिन्न हूँ और अनादिकाल से जो एक क्षेत्रावगाह में रहा है ऐसा ज्ञानावरणादिक कर्म है वह मेरे से भिन्न है। तथा आत्मा और कर्म इन दोनों की निकटता से जो विकार होता है सो भी मेरे भिन्न-अलग हैं। इसी प्रकार काल और क्षेत्र से लेकर जितने पदार्थ हैं वे भी मुझसे अलग हैं। इसी प्रकार अपने-अपने गुण पर्यायों में विभूषित सर्व पदार्थ हैं सो अपने-अपने स्वभाव से अलग-अलग ही स्थित हैं। जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल ये छह द्रव्य अनादिकाल से स्वयंसिद्ध, अकृत्रिम, अविनाशी जैसे थे वैसे ही हैं। ये कभी न सात या पाँच

हुए, न होंगे और न वर्तमान में सात या पाँच हैं। अर्थात् ये छह हैं सो छह के छह ही हैं। जैसे अग्नि में उष्णता है वैसे ही इन छह द्रव्यों में मात्र जीव द्रव्य में ज्ञान गुण है। शेष पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल इन पाँच द्रव्यों में ज्ञान गुण का लेश भी नहीं, इसलिये मैं, पुद्गल द्रव्य नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था। उसी प्रकार मैं धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, और कालद्रव्य नहीं हूँ, न होऊँगा और न हुआ था - इस प्रकार ऐसा जो मानता-जानता है वह जीव अंतरात्मा है।

**दोहा** - थोड़ी सी कथनी विषै, बहुत बात है सार।
धर्मदास क्षुल्लक लियो, निश्चय करि निरधार।।१।।

जो मैं अखंड और सदाकाल, जागती ज्योति पहले बहिरात्मदशा में कर्ण द्वारा सुनता था सो अखंड, सदाकाल जागती ज्योति और स्वयंसिद्ध मैं ही हूँ, क्योंकि यदि मैं जागृत न होता तो स्वप्न की रचना को कैसे देखता-जानता गाढ़ निद्रा के समय स्वप्न भी नहीं रहता, सो उस समय भी मैं जागृत ही था क्योंकि यदि जागृत न होता तो मुझे बड़ी गाढ़ निद्रा आई अब उचट गई, मैं बड़े आनंद में सोता था, यह कैसे मालूम होता। उस समय यदि मैं जागृत न होता तो इस समय सोने और जागने की मैं कैसे कहता? जागृत है सो देखता-जानता है और देखना-जानना यह जीव का निज गुण है।

कहते हैं कि निगोद में जीव के अक्षर के अनंतवें भागप्रमाण ज्ञान है। इससे यह निश्चय हुआ कि ज्ञान है तो देखना-जानना भी है। तथा देखता-जानता है तो जागृत भी है, किसी काल न सोया, न सोऊँगा और न सोता हूँ। मैं तो सदाकाल शाश्वत, अखंड

और स्वयंसिद्ध जागती ज्योति हूँ। मैं सूक्ष्म भी हूँ और महान भी हूँ। मैं शून्य भी हूँ और अशून्य भी हूँ। मैं उपजता-निपजता भी हूँ और नित्य भी हूँ। नास्तिरूप भी हूँ और अस्तिरूप भी हूँ। एक स्वरूप भी हूँ और अनेकस्वरूप भी हूँ। ऐसे अनेक धर्मस्वरूप हूँ तो भी अनेकान्तगर्भित जो स्याद्वादनय उससे दृढ़ प्रतीति को प्राप्त हुआ हूँ।

दृढ़ प्रतीति को किस प्रकार प्राप्त हुआ हूँ - पुद्गल अचेतन-अजीव है सो तो मूर्तिक है तथा मैं जैसा पुद्गल है वैसा मूल से ही नहीं, इसलिये अमूर्तिक होने से मैं इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, इसलिये मैं सूक्ष्म हूँ।

**प्रश्न - सूक्ष्म किसको कहते हैं ?**

**उत्तर -** जो किसीके द्वारा पकड़ने में नहीं आया, न आवेगा और न आता है वह सूक्ष्म है।

तथा न्याय से यही बात इस प्रकार सिद्ध होती है जो सबसे योद्धा-महान् है वह भी किसी की पकड़ में नहीं आता है, इसलिये मैं महान भी हूँ। तथा जैसा मैं हूँ वैसे ये पुद्गलादिक द्रव्य नहीं, इसलिये पुद्गलादिक द्रव्यों के स्पर्शादि गुणों की अपेक्षा मैं शून्य हूँ। तो भी मैं देखने-जानने रूप ज्ञान गुण सुख, सत्ता और चैतन्य-जीवत्व से युक्त हूँ, इसलिये मैं शून्य नहीं हूँ। तथा परिणमन स्वभाव की अपेक्षा अगुरुलघुत्वरूप अविभाग प्रतिच्छेदों के द्वारा मैं उपजता-विनाशता हूँ। तो भी द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा सदा शाश्वत एकरूप जैसा हूँ वैसा ही स्थित रहता हूँ, इसलिये नित्य भी हूँ। तथा मैं स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा अस्ति रूप हूँ तो भी परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा नास्ति रूप भी हूँ। तथा मैं जीव हूँ सो मैं अपने जीवत्व स्वरूप को छोड़कर कभी भी अजीव

नहीं हुआ, न होऊँगा और न हूँ, इसलिये मैं एकरूप भी हूँ तो भी मेरे ज्ञान गुण में यह स्वप्न जाल-जंजाल अनेक प्रकार का होता है और बिगड़ जाता है, इसलिये मैं अनेकरूप भी हूँ। इस प्रकार स्याद्वादनय से ये सभी धर्म मेरी दृढ़ प्रतीति में आते हैं। ऐसा अमूर्तिक ज्ञान, सुखमयी सदाकाल जागती ज्योति चिद्रूप जो है सो मैं ही हूँ। सो मुझे कौन जानता है ! जिसके जानने का गुण शक्ति से व्यक्त रूप हुआ है सो मुझे नियम से जानता है। तथा जितना नय-न्याय है उतना ही वाद-विवाद है और जितना वाद-विवाद है उतना ही मिथ्या है, इसलिये पूर्णदशा में नय-न्याय मूल से ही नहीं। चिंता मत कर, अहंकार का त्याग किये बिना स्वरूप ज्ञानघन का अखंड अचल स्वानुभव नहीं होता।

**प्रश्न - अहंकार कैसे छोड़ना ?**

**उत्तर** - अहंकार को त्यागने के लिये तथा जन्म-मरणादिक भ्रमजाल से भिन्न होने के लिये सर्व प्रथम सप्त व्यसन पाप-अपराध को छोड़कर एकान्त वन पर्वतादिक में बैठकर मन द्वारा मैं का आलंबन लेकर इस प्रकार भावना करे - 'मैं' इसके प्रथम कोई है, क्योंकि प्रथम कोई नहीं होता तो मैं नहीं होता। जैसे घट के प्रथम कुम्हार है। प्रथम कुम्हार नहीं होता तो घट नहीं होता। इस न्याय से निश्चय ही कोई 'मैं' के प्रथम है। तब अवश्य ही कोई 'मैं' के अंत में भी है। जब 'मैं' के आदि-अंत कोई है तो मध्य भी कोई है। 'मैं' आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं, मैं मूल से ही नहीं। बाकी कोई है सो ही सोऽहम्।

अब मैं मूल से ही हूँ नहीं, परन्तु अनोहोना सा बनकर 'मैं' के द्वारा मैं अपने केवलज्ञान स्वरूप निराकार का मनन करता हूँ। 'मैं' को जितनी वस्तु चर्म, नेत्र द्वारा दिखलाई देती है सो सर्व

आकार है, किन्तु मैं आकार नहीं निराकार हूँ।

**प्रश्न - पाँच इन्द्रियाँ आकार है आकार और भी है कि नहीं ?**

**उत्तर -** जो कुछ वचन स्वरूप है। सुननेरूप है, दिखाई देनेरूप है और पकड़ने में आता है वह सब आकार है। ये तन-मन-धन-वचन निराकार स्वरूप न हैं, नो होंगे और न हुये था। और निराकार में सूर्य और प्रकाश के समान तन्मयपना नहीं है। जैसे अग्नि में उष्णता है वैसे ही जिस वस्तु में ज्ञान गुण है वही मैं हूँ। पाँच इन्द्रियाँ मैं नहीं, तथा पाँच इन्द्रियों के आदि-अंत-मध्य कोई है सो भी मैं नहीं, बाकी कोई है सो ही मैं हूँ।

(अन्य मत में वर्णित) स्थूल देह पंचभूत जो पच्चीस विभाग से तन्मयी है वह भी मैं नहीं और इस स्थूल देह पंचभूत जो पच्चीस विभाग से तन्मयी इसके कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश - यह पंचभूतमयी देह है, सो भी मैं नहीं और इस पंचभूतमयी देह के कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ। पृथ्वी का रोम, त्वचा, नाड़ी,. माँस, अस्थि पाँच, जल के लार, मूत्र, खून, पसीना, वीर्य पाँच, वायु का चलना, दौड़ना, निरोधन, प्रसारण, संकोचन पाँच, आकाश के काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय पाँच - ये पंचभूतमयी देह के पच्चीस विभाग (अन्य मत में वर्णित) हैं वह भी मैं नहीं और इन पच्चीस विभागों के कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ।

सूक्ष्म देह के पच्चीस विभाग करके है वह भी मैं नहीं, और इस सूक्ष्म देह के कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ।

भूमि के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध - ये पाँच, जल के वाचो, हस्त, पाद, उपस्थ, गुदा - पाँच, अग्नि के श्रोत, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण - ये पाँच, वायु के व्यान, समान, उदान, प्राण, अपान - ये पाँच, आकाश के अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार - ये पाँच - ये सूक्ष्म देह के पंचभूत के पच्चीस विभाग (अन्य मत में वर्णित है) वह भी मैं नहीं, और इस सूक्ष्म देह के पंचभूत के पच्चीस विघा हैं इनके कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ।

जैसे अग्नि में गर्मपना है वैसे ही जिस वस्तु में ज्ञान गुण है वही सोऽहम्

स्थूल देह, सूक्ष्म देह, कारण देह, महाकारण देह, यह चतुष्टय ४ देह है, वह तो मैं मूल से ही नहीं और इन देहों के कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वही मैं हूँ।

स्थूल देह के जागृतावस्था, विश्रामोपौनी, नेत्रस्थान, ज्ञानेन्द्रिय, स्थूल, भोग, बेखरी, वोचा, रजोगुण, आकार मात्रा - ये ७, सूक्ष्म देह के स्वप्नावस्था, तैजसोनिमाणी, कंठस्थान, शरीर के भीतर प्रवृत्ति के भोग, मध्यमावाचा, सत्वगुण, उकार मात्रा ७ कारण देह के सुषुप्तीवस्था, प्रज्ञाभिमानी, हृदय स्थान, आनंद भोग, पश्यंति वांचा, तमोगुण मकारमात्रा ७ महाकारण देह के, तूर्यावस्था, प्रत्यगात्माभिमानी, मूत्रिस्थान, परमानंद भोग, परवाचो शुद्ध सत्वगुण, अर्धमात्रा ७ इस प्रकार चार देह के ये २८ गुण हैं वह भी मैं नहीं, इन चार देह के २८ गुण हैं इनके कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं बाकी कोई है वह भी मैं नहीं।

और जैनोक्त कथित पंच देह, शरीर औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण - ये पाँच शरीर है वह भी मैं नहीं और

इन पाँच शरीर के कोई आदि-अंत-मध्य है, वह भी मैं नहीं, बाकी कोई है वही मैं हूँ।

'गुणपर्ययवत् द्रव्यं, तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् सत् द्रव्य लक्षणं' पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य कालद्रव्य इन पाँच द्रव्यों से (भिन्न) मैं ज्ञानमयी हूँ, वह भी एक छठवाँ द्रव्य हूँ, सो नहीं उपजा, न ही इन पाँच को मैंने उपजाया।

**भावार्थ :-** पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल का तथा मुझ ज्ञानमयी स्वरूप का सूर्य-प्रकाशवत् न तन्मीयपना हुआ, न है, न होगा।

स्व का प्रतिपक्ष पर है और पर का प्रतिपक्ष स्व है। अतः स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव है वह भी मैं नहीं तथा परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव है वह भी मैं नहीं। अर्थात् स्व और पर से मूल ही से कोई अलग का अलग जैसा का तैसा है वही मैं हूँ।

तन, मन, धन, वचन को तन्मय होकर नहीं जानता हूँ, वही मैं हूँ और वह मैं नहीं - इन दो से तन्मय न होगा (न हुआ) न है - ऐसा कोई है वही मैं हूँ।

जितना कुछ देखने में आता है, भोगने में आता है, सुनने में आता है, अनुभव में आता है, उससे मूल ही से तन्मय नहीं है, नहीं हुआ, नहीं होगा - ऐसा कोई है वह मैं हूँ।

जैसे इतने बड़े सूर्य के प्रकाश में एक राई जाने कहाँ पड़ी है वैसे ही जिसके प्रकाश में लोकालोक व अनंत ब्रह्मांड न जाने किधर कहाँ पड़ा है-ऐसे कोई है वही मैं हूँ।

जैसे सूर्य के अंधकार का समागम-एक तन्मयपना न हुआ, न होगा, न है, वैसे ही उस स्वस्वरूपी ज्ञानघन का और इस लोकालोक का सूर्य-प्रकाशवत् न तन्मयीपना है, न होगा और न

हुआ -ऐसा कोई अपूर्व अखंड ज्ञानमयी है - वही मैं हूँ, मैं हूँ, मैं हूँ।

तू, मैं, यह, वह - इन चार से तन्मय मूल से ही नहीं वही मैं हूँ।

मैं, यह, वह, तू - इन चार के द्वारा होकर तथा तू के द्वारा होकर तुझको ही समझ।

जैसे जहाँ सूर्य है वहाँ अंधकार नहीं और जहाँ अंधकार है वहाँ सूर्य नहीं वैसे ही तू केवलज्ञानमयी है, वहाँ यह तन, मन, धन, वचन नहीं, नहीं, नहीं। तू के द्वारा तू मान।

जैसे सूर्य से अंधकार मूल ही से अलग है वैसे ही केवलज्ञान स्वरूपी सूर्य से, यह ब्रह्मांड व तू, मैं, यह, वह - ये तन्मनयी तत्स्वरूपमयी न है, न होंगे, न थे।

जगत-संसार, तन, मन,धन, वचन, एवं तू, मैं, यह, वह, जन्म, मरण, नामादिक हैं, परन्तु ज्ञान स्वरूपी वस्तु से तन्मयी नहीं। विरोधी पदार्थ एक काल एक जगह न तन्मय हुआ, न होगा, न है।

दर्पण में अनेक प्रकार की वस्तु तन्मयी के समान दिखलाई देती है, परन्तु वह सर्व दर्पण से भिन्न है, तन्मय नहीं। लोकालोक में व्यापक है और लोकालोक में व्यापक नहीं है ऐसा जो कोई अपूर्व चिद्रूप ज्ञानधन है सो तो मैं ही हूँ।यह लोकालोक मेरे स्वरूप ज्ञानधन से ऐसे अलग है जैसे सूर्य से अंधकार अलग है।

**प्रश्न - अपूर्व कहा तो इसका क्या आशय है ?**

**उत्तर** - 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन' अथवा 'जैसा पीवे पानी वैसी बोले वानी' इस न्याय के अनुसार मेरे अंतःकरण में स्वरूप ज्ञान की निश्चय-अचल भावना होने योग्य थी सो हो गई। अब वृथा ही भ्रम-शंका-तर्क उत्पन्न होते हैं सो होओ, नहीं होवे तो मत

होओ। मैं तो भ्रम-शंका-तर्क से तन्मय नहीं, न होऊँगा और न था।

सिद्ध भगवान छह द्रव्यों से सातवाँ पाँचवाँ द्रव्य नहीं, क्योंकि वे सिद्ध भगवान अजीव-अचेतन नहीं। तथा हे जीव ! तू भी छह द्रव्यों से अलग साँतवाँ या पाँचवाँ द्रव्य नहीं, क्योंकि तू भी कदाचित् न अजीव-अचेतन हुआ, नो होगा और न है। तू स्वयं को सिद्ध भगवान से अलग समझेगा-मानेगा जानेगा तो चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण का दुःख संकट प्राप्त करेगा-भोगेगा।

कर्म का कार्माण (वर्गणारूप) पुद्‌गल ही कर्ता है, अजीव-अचेतन का कर्ता-हर्ता जीव-चेतन नहीं। तथा जीव-चेतन का कर्ता-हर्ता अजीव-अचेतन नहीं। तू यह निश्चय जान कि जीव है सो जीव ही है तथा अजीव है सो अजीव ही है।

**प्रश्न - जीव एक ही या अनेक हैं ?**

**उत्तर** - एक भी है और अनेक भी हैं।

**प्रश्न - एक भी है और अनेक भी वह कैसे ?**

**उत्तर** - जैसे एक जाति, एक आकार में स्थित एक वर्ण और एक ज्योति के रत्नों की राशि दूर से एक दिखलाई देती है, परन्तु हैं वे रत्न अलग-अलग ही, वैसे ही जीव एक और अनेक हैं। इसमें जो जीव आपको जीव न मानता है-न समझता है-जानता है वह जीव संसारी मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है तथा गुरु के उपदेश से और अपने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से जो आपको निश्चय ही जड़मूल से जाव मानता है-समझता है-जानता है वह जीव अंतरात्मा पद का उल्लंघन कर परमात्म पद में जैसा है वैसा वह का वही होकर सदा शाश्वत जैसा है वैसा ही रहेगा, क्योंकि दूध में से घी निकलने के बाद तत्पश्चात् मिलता नहीं है। तूं भले ही करोड़ों कष्टों को सहन कर, करोड़ों बार तपश्चर्या कर, परन्तु तू जैसा ज्ञानादि गुण

युक्त है सो तू वह का वह ही रहेगा। तू कभी भी अजीव न हुआ, न होगा और न है। तू नया नहीं, अनादि से ही तू जैसा का तैसा ही है। इसी प्रकार अजीव भी अनादि से जैसा का तैसा ही है। तू अपना और अजीव का एक स्वरूप मत जान।

एक विचार - हे जीव तूं कहाँ नहीं था, अब तूं कहाँ नहीं है और कहाँ नहीं होवेगा, विचार तूं तेरे भीतर ही है या बाहर है, अथवा तूं तेरे भीतर-बाहर नहीं है, सत्य रूप से विचार कर। तूं अस्ति है या नास्ति है, अथवा अस्ति-नास्ति से सर्वथा प्रकार अलग है।

तथा 'मैं' है सो यह शब्द है और शब्द अचेतन-अजीव है। इसलिये अचेतन-अजीवपना शब्द से अलग नहीं है सो तो मैं मूल से ही नहीं हूँ। परन्तु अनहोना सा बनकर 'मैं' के द्वारा मेरा मैं निश्चय किया सो वही निश्चय कहता हूँ-तू सुन ! जगत-संसार होता हुआ भी मैं हूँ और जगत-संसार नहीं होता हुआ भी मैं हूँ, मैं हूँ ही, मैं कब नहीं था और मैं कब नहीं होऊँगा। तथा मैं कब नहीं हूँ ? मैं तो सदा शाश्वत ही हूँ। अपने से मैं कब अलग हुआ था, अपने से मैं कब अलग होऊँगा तथा अपने से मैं कब अलग हूँ ? मैं तो सदा शाश्वत हूँ सो ही हूँ। जो मुझसे अलग है उनसे मैं कब मिला था ? जो मुझसे अलग हैं उनसे मैं कब मिला था, जो मुझसे अलग हैं उनसे कब मिलूँगा ? तथा जो मुझसे अलग है उनसे कब मिला हूँ ? मैं तो सदा शाश्वत अलग ही हूँ, अलग ही था और अलग ही रहूँगा।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच जैसे हैं वैसा मैं कभी नहीं हुआ, न होऊँगा और न हूँ। तथा जैसा मैं हूँ वैसे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ये पाँच न हुए, न होंगे

और न हैं।

अब पाँच द्रव्यों का संक्षेपमात्र वर्णन करता हूँ - पुद्गल तो मूर्तिक है शेष चार अमूर्तिक हैं। पुद्गल तो आकार है, शेष चार निराकार हैं। स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये पुद्गल में है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। काला, पीला, हरा, शुक्ल और लाल ये वर्ण पुद्गल के हैं, शेष चार द्रव्यों के नहीं है। शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं, शेष चार द्रव्यों की नहीं है। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच द्रव्य अचेतन-जड़ है, इसलिये मेरा जो प्रसिद्ध देखने-जानने रूप ज्ञान गुण है, यदि ये पाँच द्रव्य नहीं होते तो देखने-जाननेवाला मैं किसको देखता-जानता और मैं देखने-जानने रूप गुणवाला हूँ इस प्रकार मेरी मुझको कैसे खबर होती है। ये पाँच हैं, इसलिये मेरी मुझे खबर हुई कि इन पाँच से सर्वथा प्रकार अलग छठवाँ देखने-जाननेवाला ज्ञानघन मैं हूँ।

इन पाँचों में प्रथम पुद्गल है सो भी मुझे नहीं जानता है। शेष चार द्रव्य हैं धर्म, अधर्म, आकाश और काल सो ये चार भी मुझे नहीं जानते हैं। इन पाँच में ज्ञान गुण मूल से ही नहीं, नहीं, नहीं। जैसा मैं हूँ सो मुझ से ये सर्वथा प्रकार अलग हैं, मेरे जैसे नहीं।

**भावार्थ :-** ये मेरे से अनादिसे ही अलग हैं। उनका न मैं त्याग करता हूँ और न मैं ग्रहण करता हूँ। किन्तु मैं मुझसे न अलग हुआ, न अलग होऊँगा, और न अलग हूँ, अतः मुझे मेरे स्वरूप की क्या प्राप्ति और क्या अप्राप्ति ? अनंत-अनंत करोड़ो की प्रमाण उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल व्यतीत हो गया, होवेगा, परन्तु कालाणुमात्र समय में मैं कब नहीं था ? भावार्थ :- मैं सदा ही था तो भी इस वर्तमानकाल के अणु बराबर हूँ।

**प्रश्न - बराबर क्या ?**

**उत्तर -** कालाणु है और मैं भी हूँ। अनंतान्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल व्यतीत हो गया, परन्तु मैं काल के साथ व्यतीत नहीं हुआ। तथा अभी तक जैसी अनन्तान्त उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी व्यतीत हो गई वैसी आगे भी व्यतीत होगी तो भी मैं जड़-मूल से जैसा हूँ वैसा मेरा ही हूँ, वह का वही रहूँगा। मेरे सम्मुख इन पाँचों द्रव्यों का खेल, जन्म-मरण, नाम-अनाम, पाप-पुण्य, निद्रा-स्वप्न, जाल-जंजाल, चिंतवन, विचार, लिखना-पढ़ना, वाचना, बोलना, बतलाना, कहना-सुनना, क्रोध-मान-माया-लोभ, ममकर-अहंकार आदिक होते हैं, पहले हो गये और होवेंगे तो भी मैं जैसा का तैसा, जैसा हूँ वैसा ही हूँ। जहाँ से मैं शब्द तथा सोऽहम् शब्द उत्पन्न होता है उस स्थान के प्रथम के भी प्रथम, उससे अनन्तानन्त गुणे पहले प्रथम मूल से ही जैसा का तैसा, जैसा है वह ही है, उसमें ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, सुखशक्ति, चेतनाशक्ति, जीवनशक्ति आदि अनंत शक्तियाँ ऐसे प्रविष्ट हो रही हैं जैसे अग्नि में उष्णता प्रविष्ट हो रही है। ऐसा कोई है वह तो मैं ही हूँ, क्योंकि यदि मैं आदि, मध्य और अंत में नहीं होता तो 'मैं' शब्द और 'सोऽहम्' शब्द कहाँ से होता और बिगड़ता। जैसे प्रकाश रूप सूर्य नहीं होता मृगजल कहाँ से होता और बिगड़ता। जैसे सूर्य का और मृगजल का मेल है वैसे ही 'मेरा' और 'मैं' शब्द तथा 'सोऽहम्' शब्द का मेल है। तथा जो कभी भी मेरे ध्यान में नहीं आया, नहीं आवेगा और नहीं आता है, उसका मैं क्या ध्यान करूँ। तथा जो सदा शाश्वत ध्यान में आता है, आया था और आवेगा उसका भी मैं क्या ध्यान करूँ। तथा जो कदाचित् भी दिखा नहीं, दिखेगा नहीं और दिखता भी नहीं उसे मैं क्या देखूँ। तथा जो शाश्वत दिखता है, दिखा था

और दिखेगा उसको भी मैं क्या देखूँ। जैसे सूर्य से अंधकार अलग है वैसे ही मुझसे जो कोई अलग है उस मैं कैसे ग्रहण करूँ और कैसे त्यागूँ। तथा जैसे सूर्य से प्रकाश अलग नहीं है वैसे ही मुझसे जो अलग नहीं है उसे भी मैं कैसे त्यागूँ और कैसे ग्रहण करूँ।

**प्रश्न - तुम कौन हो ? सत्य बोलो, तुम कौन हो ?**

**उत्तर** - बोलना, बतलाना,ड़ कहना-सुनना, समझना-समझाना आदिक जड़-मूल से ही मेंरा धर्म नहीं, नहीं, नहीं। तो भी तेरे प्रश्न को निमित्त कर अनबोलता हुआ भी मैं बोलता हूँ - सुन ! मैं स्त्री-पुरुष-नपुंसक नहीं। मैं नाम-अनाम नहीं। मैं शून्य-अशून्य नहीं। मैं अस्ति-नास्ति नहीं। मैं विनाशी-अविनाशी नहीं। मैं एक-दो आदि नहीं। मैं एक-अनेक नहीं। मैं जीव-अजीव नहीं। मैं मूर्ति-अमूर्ति नहीं। मैं छोटा-बड़ा नहीं। निकट-दूर नहीं। मैं बद्ध-मुक्त नहीं। मैं लोक-अलोक नहीं। मैं लोकालोक से सर्वथा प्रकार भिन्न प्रथम से ही हूँ। मैं नीच-उच्च नहीं। मैं वर्ण-अवर्ण नहीं। मैं रूपी-अरूपी नहीं। मैं भोगी-योगी नहीं। मैं व्रती-अव्रती नहीं। मैं लोभी-अलोभी नहीं। मैं कर्म-अकर्म नहीं। मैं पुरुष नहीं। मैं नारी नहीं। मैं नपुंसक नहीं। मैं साधु-असाधु नहीं। मैं योगी-अयोगी नहीं। मैंने कुछ लिया भी नहीं और कुछ त्यागा भी नहीं। मैं गुरु-शिष्य नहीं। मैं किसीका न भाई हूँ, न बेटा हूँ और न पिता हूँ। मैं प्रिय-अप्रिय नहीं। सिद्ध-असिद्ध नहीं। मैं शब्द-अशब्द नहीं। मैं वचन-मौन नहीं। मैं उत्तम-मध्यम-जघन्य नहीं। मैं आदि-अंत-मध्य नहीं। मैं आत्मा-अनात्मा नहीं मैं निश्चय-व्यवहार नहीं। मैं मूर्ख-पंडित नहीं। किसीके भी वचन से कथन में नहीं आया, नहीं आवेगा और न आता है ऐसा जो कोई है वह मैं ही हूँ। मैं भ्रम-अभ्रम नहीं। मैं विचार-अविचार नहीं। मैं

लघु-दीर्घ नहीं। न मैं सोया, न मैं जागा। न मैं आगे, न मैं पीछे। न मैं किसीका, न कोई हमारा। न मैं एक, न मैं दो, न मैं तीन न मैं चार, पाँच, पचास आदि। मैं तम-प्रकाश नहीं। मैं भीतर-बाहर-मध्य नहीं। मैं तन-मन-धन-वचन नहीं। मैं प्रकट-गुप्त नहीं। न तो कोई मेरा स्वरूप देखता है और न मैं अन्य किसीका स्वरूप देखता हूँ। मैं किसीको जानता नहीं। मैं काला-पीला-हरा-लाल-धवल नहीं। मैं मैं ही मैं हूँ। सो है ही है। जैसा मैं हूँ वैसा अन्य नहीं। तथा जैसा अन्य है वैसा मैं नहीं। जितना नाम है वह भी मैं नहीं। तथा जितना अनाम है वह भी मैं नहीं। मैं-तू-यह-वह ये चार हैं सो कुछ और है और इन चार से सर्वथा प्रकार कोई अलग है वह कुछ और है। वही मैं हूँ, वही मैं हूँ। मैं भाव-स्वभाव, विभाव-परभाव नहीं। मैं परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव नहीं। तथा मैं स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव नहीं। स्वचतुष्टय-परचतुष्टय से जो सर्वथा प्रकार अलग है वही मैं हूँ, वही मैं हूँ।

**प्रश्न - आप पर नहीं यह तो संभव है, परन्तु स्व भी नहीं यह कैसे संभव है ?**

**उत्तर** - पर की अपेक्षा स्व है तथा स्व की अपेक्षा पर है। परन्तु अपेक्षा रहित 'मैं' के द्वारा मैं मूल से ही जैसा का तैसा हूँ, 'वह' का वही हूँ, वह ही हूँ, वह ही हूँ। मैं पूज्य-अपूज्य नहीं। मेरी निंदा-स्तुति, पूजा न कोई कभी की, न कभी कोई करेगा तथा न कभी करता है, क्योंकि निंदा, स्तुति और पूजा देह की और नाम की है सो देह और नाम मैं मूल से ही नहीं। देह को मैं जानता हूँ, किन्तु देह मेरे ज्ञान स्वरूप को न जानता है, न देखता है। निंदा, स्तुति और पूजा से सर्वथा भिन्न है वही मैं हूँ। अलोक के भीतर तीनसौ तैंतालीस धनराजु प्रमाण यह तीन लोक है। उसमें

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल है तथा और भी वचन प्रमाण तथा वचनातीत कितनी ही रचना वस्तु है उक्त तीन लोक में इस प्रकार के तीन लोक से सर्वथा प्रकार जो कोई अलग का अलग है वही मैं हूँ, वही मैं हूँ। मैं लोक-अलोक नहीं तथा लोक-अलोक में जितनी वस्तु रचनादिक है वह भी मैं नहीं। इस लोक-अलोक के साथ मेरे ज्ञान स्वरूप का मूल से ही दुग्ध-घृत के समान, फूल-सुगंध के समान तथा तिल-तेल के समान मेल है, सूर्य-प्रकाश के समान मेल नहीं। लोक-अलोक का और मेरे ज्ञान-स्वरूप का परस्पर तम-प्रकाश के समान भेद है, प्रदेशभेद है, विरोध है।

**प्रश्न - तुम लोक-अलोक से सर्वथा प्रकार भिन्न कौन हो ?**

**उत्तर** - क्या कहूँ, कैसै कहूँ, जहाँ तन नहीं, जहाँ मन नहीं, जहाँ धन नहीं, जहाँ वचन नहीं, जहाँ समझने-समझानेवाला नहीं, जहाँ कहने-सुननेवाला नहीं, जहाँ जीव-अजीव आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष नहीं, जहाँ जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल नहीं, जहाँ शून्य-अशून्य आदिक नहीं। क्या कहूँ, कैसे कहूँ, मेरी मैं जानता हूँ, कहने मैं नहीं आता। जैसे कानों से बहरा, नेत्रों से अंधा, जिह्वा से गूंगा ऐसा एक पुरुष है जिसके मुख में कोई मिश्री की डली डाल कर बाद में उसीसे पूछा - कहो भाई ! मिश्री कैसी मीठी लगी। मिठास के आनंद की बात कहो ! किन्तु वह पुरुष मिश्री के मिठास को जानता है, आनंद को अनुभवता है। परन्तु कह नहीं सकता, क्योंकि कहने का गुण पुद्गल से तन्मयी शब्दों का है। वैसे ही मैं लोक-अलोक से सर्वथा प्रकार **भिन्न हूँ सो मेरे भिन्नपने को मैं जानता हूँ, परन्तु कह नहीं सकता।**

घायल की गति घायल जाने, क्या जाने वेद्य बिचारा।

## पद

अवधु नाम हमारो राखै लो पर महारस चाखे। अ.
ए आंकणी ना हम पुरुषा ना हम नारी। वरनन मात हमारी।।
जाति न पाति साधु न साधक ना साधु ना हम भारी।अ.।।१।।
ना हम ताते न हम शीरे ना दीरध ना छोटा।
ना हम भाई ना हम भगिनी ना हम बाप ना बेटा।अ.।।२।।
ना हम मनसा ना हम शब्दा ना हम तन के धरनी।
ना हम भेष भेषधर नाहीं ना हम कर्ता-करनी।अ.।।३।।
ना हम दरशन ना हम परशन रस, गंध, कछु नाहीं।
आनंदघन चेतनमयी मूरति सेवक जिन बलि जाई।अ.।।४।।

मुझे जितनी वस्तु दिखलाई देती है और जितनी वस्तु नहीं दिखलाई देती है उन दोनों से मैं सर्वथा प्रकार भिन्न हूँ। जो लोक्-अलोक से सर्वथा प्रकार अलग है वही सोऽहम्। तथा सोऽहम् नहीं और सोऽहम् हूँ इन दो से सर्वथा प्रकार अलग है, 'सो' इसको बिन्दु नहीं मानना, पूर्ण चिह्न मानना। विचार चिंतवन का ही विचार चिंतवन है, नहीं विचार चिंतवन ही नहीं विचार चिंतवन है जैसे धतूरा का ही धतूरा है तथा आम का ही आम है। अर्थात् विचारने में चिंतवन में आता है जिसे अनन्त केवलज्ञानी भी नहीं जानता और भी ज्ञानी-अज्ञानी जिसको नहीं जानता ऐसा कोई है वह तो मैं ही हूँ और नहीं, जहाँ तन, मन, धन, वचन नहीं तथा जहाँ ज्ञान-अज्ञान, जीव-अजीव नहीं, जहाँ बंध-मोक्ष नहीं, जहाँ लोक-अलोक, शून्य-अशून्य, विधि-निषेध नहीं, जहाँ तू-मैं-यह-वह इत्यादि कोई भी नहीं वहाँ केवल मैं ही हूँ, ऐसा मैं मूल से ही हूँ, नया नहीं हूँ। विचार करना, चिंतवन करना, लिखना-लिखाना, पढ़ना-पढ़ाना,

समझना-समझाना, लेना-देना, बोलना-बतलाना, देखना, नहीं देखना, जानना, नहीं जानना, चलना, हिलना, गमनागमन, नाम-अनाम अकार-निराकार, मूर्ति-अमूर्ति, लोक-अलोक तथा लोक-अलोक में जितनी वस्तु रचना है वह सर्वथा प्रकार मुझसे अलग है, अलग है, वह मैं ही हूँ। यहाँ दृढ़ स्वानुभव-मनन हुआ। मैं ही हूँ यह तो शब्द वचन है। इस शब्द वचन से सर्वथा प्रकार कोई अलग है सोऽहम्।

**प्रश्न - हे श्री गुरु ! मैं कौन हूँ ?**

**उत्तर** - तूं जीव है।

**प्रश्न - मैं जीव हूँ तो मुझसे अलग अजीव कौन है ?**

**उत्तर** - तनता मनता वचनता जड़ता जड़से मेल।
लघुता गुरुता गमनता, यह अजीवका खेल।।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तथा शब्द बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप, उद्योत इत्यादि यह सब पुद्गल की पर्याय है, वह सब अजीव है। जैसा तू है वैसा यह अजीव का खेल नहीं तथा जैसा यह अजीव का खेल है वैसा तूं नहीं। इस अजीव का और तेरा, अग्नि और उष्णता का जैसा मेल है वैसा, मेल नहीं। मनन करना। सुन - सूर्य और अंधकार के समान तुझमें और अजीव में अंतर है। और सुन - तू है सो तू ही है और अजीव है सो अजीव ही है। तू अजीव को जानता है, किन्तु अजीव है सो तुझे नहीं जानता। सुन ! जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। उनमें तूं प्रथम जीव है, बाकी छह अजीव हैं। जितने जीव हैं वे सब तेरे समान ही हैं। परन्तु जो जीव अपने स्वरूप स्वानुभव गुण लक्षणादिक को आपमयी जानता है मानता है वह तो शुद्ध जीव है तथा जो जीव तन,मन,धन,वचनादिक अजीव को और आपको एक स्वरूप स्वभावगुण लक्षण अग्नि-उष्णता

के समान मानता है, जानता है वह जीव अशुद्ध है, मिथ्यादृष्टि है। वही संसार है। वही जन्म-मरण के दुःख संकट में पड़कर भोगता है। जैसे दहीं में से घृत निकल कर अलग हो जानेपर फिर उसमें मिलता नहीं वैसे ही मैं इस भ्रमजाल संसार से निकल कर जैसा था वैसा का वैसा ही समझकर अलग का अलग रहा, क्योंकि पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच हैं सो अजीव-अचेतन हैं। इन पाँचों में ज्ञान गुण का लेश भी नहीं। जैसा यह परपंच है वैसा मैं नहीं। तथा जैसा मैं हूँ वैसा यह परपंच नहीं। जैसा सूर्य है वैसा अंधकार नहीं तथा जैसा अंधकार है वैसा सूर्य नहीं। उसी प्रकार इस परपंच में और मुझमें अंतर है। मैं मैं नहीं, हूँ हूँ सो भी मैं नहीं। बाकी कोई है सो है। क्या विचार करूँ।

जो आपको बद्ध मुक्त मानता है जानता है वह भी मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। तथा जो आपको बद्ध मुक्त न मानता है न जानता है वह भी मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है, क्योंकि वस्तु स्वभावमें बंध मोक्ष संभव नहीं। तथा स्वभाव में तर्क का अभाव है। लोक-अलोक से सर्वथा प्रकार प्रारंभ से ही अलग है वह है ही। उसका नाम, रूप-अरुप, आकार-निराकार, बंधमोक्षादिक क्या। हो हो हो। जिसको केवलज्ञानी भी नहीं जानता और भी अज्ञानी-ज्ञानी आदि कोई भी जिसको नहीं जानता उसका क्या आकार-निराकार, उसका रुप-अरूप, उसका नाम-अनाम क्या ? उसका बंध-मोक्ष क्या ? हो हो हो र र र र जैसी मति वैसी गति यह वार्ता प्रसिद्ध है। अब जिसकी मति ऐसी है कि मैं भीतर नहीं, मैं बाहर नहीं, पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर आदि दश दिशाओं से मैं सर्वथा प्रकार मूल से अलग हूँ। मैं मनुष्य नहीं, मैं देव नहीं, मैं तिर्यंच नहीं, मैं नारकी नहीं,

मैं स्त्री, पुरुष, नपुंसक नहीं, मैं एकेनद्रिय, द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय नहीं, मैं छोटा-बड़ा, हलका-भारी नहीं, मैं लोक-अलोक नहीं, मैं बद्ध-मुक्त नहीं, मैं चेतन-अचेतन नहीं, मैं ज्ञानी-अज्ञानी नहीं, मैं शून्य-अशून्य नहीं, मैं नाम-अनाम नहीं, मैं अस्ति-नास्ति नहीं। मैं कर्ता-अकर्ता नहीं, मैं तन, मन, धन, वचन नहीं, तथा इस तन, मन, धन, वचन की जितनी रचना विलास है वह भी मैं नहीं, मैं मूर्ख भी नहीं, मैं पंडित भी नहीं, मैं दुःखी-सुखी भी नहीं, इत्यादि जितना वचन विलास है उससे तथा शरीर से मैं पार पाऊँ। 'मैं' यह अक्षर आकार वचन शब्दरूप है, आकार के भीतर आकार से तन्मयी है सो वह तो मैं जड़-मूल से नहीं, नहीं, नहीं, कदाचित् भी नहीं। पहले जितना कुछ लिख आये हैं उसके भीतर-बाहर नहीं। मैं बद्ध-मुक्त नहीं, लोक-अलोक नहीं, जीव-अजीव, ज्ञान-अज्ञान, चेतन-अचेतन मैं नहीं इत्यादि पूर्व में लिखे हुए से ऐसा कोई अलग है जैसे अमावस्या की मध्यरात्रि के अंधकार से ज्येष्ठ मास के मध्याह्न का सूर्य अलग है। ऐसा जो कोई है वही मैं हूँ। जिससे मैं (शब्द) हुआ वह मैं नहीं, 'मैं' शब्द में मैं नहीं। यह मैं नहीं, यह मैं नहीं, यह मैं नहीं। उसके प्रथम के भी प्रथम, जिस प्रथम के प्रथम कोई नहीं, मैं नहीं। स्यात् कोई होगा तो होगा, कहे कौन और सुने कौन। पूर्व में जो लिख आये हैं उसे गुरु आज्ञा प्रमाण पढ़ो, वाचों, विचार करो। पहले लिखे हुए के समान जिसकी मति है उसकी क्या गति है और उसका क्या गति होगी इसका यथार्थ रूप में विचार करो। इतना निश्चित है कि गुरु बिना केवल पढ़ने मात्र से ही साक्षात् अनुभव नहीं होता। क्यों नहीं होता ? इसका कारण यही है कि जो कोई पूछेगा कि तू बाहर भी नहीं और भीतर भी नहीं। कैसे तू बाहर नहीं

और कैसे तूं भीतर नहीं इत्यादि कोई पूछेगा, परन्तु बाद में यथावत् समाधान नहीं करेगा तो अज्ञानता के बंधक का भोगी होगा। गुरु बिना ज्ञान ऐसा है जैसे अंधकार में दर्पण।

सूर्य और प्रकाश के समान तथा अग्नि और उष्णता के समान जो मुझसे मिल रहा है उसका भी मैं कैसे त्याग करूँ तथा जैसे सूर्य से अंधकार अलग है वैसे मुझसे कोई अलग है उसका भी मैं क्या त्याग करूँ और क्या ग्रहण करूँ। सूर्य से अंधकार के समान जिससे मैं अलग हूँ वह भी मुझसे मूल से ही अलग है। तथा जैसे सूर्य से प्रकाश मिल रहा है वैसे ही कोई मुझसे मूल से ही मिल रहा है।

तो मैं भी उससे मूल से ही मिल रहा हूँ यह निश्चय विचार हुआ। अब जगत्, संसार, जन्म-मरण, दुःख-सुख, पाप-पुण्य, बंध-मोक्ष, नाम-अनाम हो तो भले ही हो, न हो तो भले ही न हो। होवे तो मुझे क्या और नहीं होवे तो मुझे क्या। जगत, संसार, जन्म-मरण, दुःख-सुख, पाप-पुण्य, बंध-मोक्ष, नाम-अनाम इनके होनेपर तो मैं होता नहीं और नहीं होने पर मैं बिगड़ता नहीं।

छह द्रव्यों को केवल देखने-जानने का गुण मेरे भीतर ऐसे विद्यमान है। जैसे अग्नि में उष्णता। सात तत्त्वों में प्रथम मैं हूँ। मुझसे प्रथम न कोई हुआ, न कोई होवेगा और न कोई है। उसी प्रकार छह द्रव्यों में प्रथम मैं हूँ। मुझसे प्रथम न कोई हुआ, न कोई होवेगा और न कोई है। मैं प्रथम हूँ इसलिये ये सब बाद में हैं। मैं नहीं होता तो ये सब मेरे बाद में कैसे होते। ये सब कैसे हुए उसकी खबर नहीं। इन सबके समान मैं न कदाचित् हुआ, न होऊँगा, और न हूँ। ये सब भी मेरे समान न कदाचित् हैं, न होवेंगे और न हुए थे। इन सबको मैं न ग्रहण करता हूँ

और न छोड़ता हूँ तथा ये सब भी मुझे न ग्रहण करते हैं और न छोड़ते हैं। जैसे छाया और सूर्य के प्रकाश गुण में अंतर हैं वैसे ही इन सबमें और मेरे देखने-जानने रूप गुण में अंतर हैं। मैं मुझसे अभिन्न हूँ तथा पर से भिन्न हूँ। जैसे सूर्य के आड़ा बादल होता है। मेरे आड़ा ज्ञानावरण कर्म है। परन्तु कर्म है सो कर्म ही है तथा मैं केवलज्ञानमयी हूँ सो केवलज्ञानमयी ही हूँ। जैसे सूर्य और बादल का अग्नि और उष्णता के समान एक तत्स्वरूपपना नहीं है। वैसे ही मुझ ज्ञानमयी सूर्यका और कर्मरूपी बादल था अग्नि और उष्णता के समान एक तत्स्वरूपपना नहीं है। जैसे किसी ने समुद्र को वेदिका द्वारा बाँधा नहीं, इसलिये सो समुद्र निर्बन्ध है तथा जैसे समुद्र के किनारे पर शहर पुरपट्टन आदि हैं, इसलिये समुद्र बँधा है वैसे ही समुद्र के समान अपार, गंभीर, अथाह, अचल और अविनाशी मैं हूँ। मैं हूँ, ये दो शब्द अचेतन-जड़ हैं। इनका जो स्वरूप हैं वैसा मैं हूँ नहीं।

हे आत्मन् ! अपने को मैं शब्द द्वारा यह एक और समझ लेना कि लोकालोक से तथा जितनी वस्तु-द्रव्य लोकालोक में है उससे, शब्द-वचन से, विचार चिंतवन से, तन-मन-धन से, विधि-निषेध से, अस्ति-नास्ति से, शून्य -अशून्य इत्यादि अन्य सबसे प्रारंभ से ही सर्वथा प्रकार जड़-मूल से ही अलग का अलग जैसा का तैसा ही मैं हूँ ही। ऐसा अपने को तू समझ। वह धन्य है, जिसे यह भावना पक्की अचल जच गई, वही परमात्मा परब्रह्म में लय को प्राप्त करेगा। तू है सो तू ही है, तू अन्य नहीं तथा अन्य है सो तू नहीं। जैसा तूं है वैसा अन्य नहीं तथा जैसा अन्य है वैसा तू नहीं। जहाँ तू हैं वहाँ तू ही है।

**दोहा** - इति अलम् इस जगत में समझ कर्यो विश्राम।
धर्मदास यो नाम है पाँच द्रव्य का जाम।।१।।
धर्मदास यो नाम है सो शरीर को सार।
अनुभव ले भवदधि तिरयो उतर गयो भवपार।।२।।
अब विचार तूं मति करै पूरण तेरो काम।
होनो थो सो हो गयो क्षुल्लक तेरो नाम।।३।।
तूं क्षुल्लक ऐलक नहीं नांव नहीं तूं सार।
सारासार विचार के तूं उतरयों भववार।।४।।
अब तेरे में तू भलो-भलो-भलो गुण सार।
भली भई या जगत मैं तूं समज्यो जो निरधार।।५।।
धर्मदास क्षुल्लक नहीं नाहिं समज्यो सबसार।
समज्यो सो क्षुल्लक नहीं निश्चय करि निरधार।।६।।

अतं सोऽहम् मैं इत्यादि ये चार हैं सो शब्द हैं। शब्द के दो भेद हैं - एक अक्षररूप दूसरा अनक्षररूप। शब्द में कहने का गुण है। जैसे अग्नि में उष्णता का गुण है वैसे शब्द में कहने का गुण है। वह पर की और आपकी वार्ता कहता है सो पर से तो अतत्स्वरूप होकर कहता है, और स्वयं से तत्स्वरूप होकर कहता है। शब्द से पृथक् जीव, धर्म, अदर्म, आखाश और काल ये पाँच हैं। पुद्गल से शब्द अलग नहीं। शब्द पुद्गल की पर्याय है। 'मैं' है सो शब्द है। वह भी अजीव अचेतन अज्ञानी है। शब्द पर की और आपकी वार्ता करता है, परन्तु आप और पर को जानता नहीं। शब्द के द्वारा कथन में आये मेरे तन-मन-धन-वचन से, लोक-अलोक से, नाम-अनाम से, जीव-अजीव से तथा बंध-मोक्ष आदि से मूल से ही अलग ऐसा कोई है वह मैं हूँ, मैं हूँ नहीं, परन्तु अनहोना सा मैं हूँ। जैसे सूर्य के भीतर प्रकाश गुण है वैसे

ही मेरे भीतर देखने-जानने का गुण है, स्वयं को और पर को देखता-जानता हूँ। पर को देखता-जानता हूँ, परन्तु पर के साथ तत्स्वरूप नहीं हूँ। किन्तु जैसे अंधकार से सूर्य अलग है वैसे मैं पर से अलग हूँ। मुझको मैं जानता हूँ। जैसे सूर्य से प्रकाश अलग नहीं वैसे मैं मुझसे अलग नहीं। किन्तु पर से मैं अतत्स्वरूप हूँ। मैं केवलज्ञानमयी हूँ, इसलिये स्वयं से मैं तत्स्वरूप हूँ।

**इति स्वात्मानुभवमनन समाप्त**

# अंतिम निवेदन

यह स्वात्मानुभवमनन ग्रंथ मैंने बातबुद्धि से संस्कृत व्याकरण विद्यारहित के लिये बनाया है। बनाया क्या है, पूर्व के प्राचीन परमात्मप्रकाश, प्रवचनसार, आत्मख्याति, पंचास्तिकाय, योगसार आदि ग्रंथों की छाया का अवलंबन लेकर मैंने अपने स्वानुभव सम्यग्ज्ञान के प्रताप से अक्षर शब्द वचन दवात कलम स्याही कागज पंच आदि पर वस्तु से मूल से ही अतत्स्वरूप अतन्मयी होकर बनाया है। इसमें शंका नहीं करना, क्योंकि ज्ञान वस्तु कर्ता कर्म क्रिया आदि में व्यापक भी है तथा अव्यापक भी है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक और अव्यापक है वैसे जानना। आकाश में देखने-जानने का गुण नहीं, ज्ञान में देखने-जानने का गुण मूल से ही तन्मयी है। तथा परमात्म प्रकाश प्रवचनसार आत्मख्याति आदि सिद्धांत ग्रंथों के पढ़ने-वाचने से स्वानुभव-सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति की प्राप्ति होती है, तो भी उनसे भी सुगम सहज इस पुस्तक के पढ़ने से स्वानुभव-सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति सहज ही सुगमतापूर्वक होगी, इसलिये हे मुमुक्षु भव्य जीव हो इस स्वात्मानुभवमनन ग्रंथ के पठन-वचन श्रवण द्वारा आप स्वयं को इस प्रकार मनन करो, ऐसा विचार करो कि हम न किसीके, कोई न हमारा, क्योंकि मैं सहज शुद्धात्मा ज्ञानानंद,

स्वभाव निर्विकरण हूँ। निजानंद निरंजन शुद्धात्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप निश्चय रत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि द्वारा उत्पन्न वीतराग सहजानंदरूप आनंदानुभूति मात्र जो स्वसंवेदन ज्ञान उस द्वारा गम्य हूँ, अन्य उपाय द्वारा गम्य नहीं। निर्विकल्प निजानंद ज्ञान द्वारा ही मेरी प्राप्ति है। मैं पूर्ण हूँ। मैं प्रथम मूल से ही ऐसा हूँ।

**दोहा -** पूरण परमातम कला सदा अखंडित सार।
धर्मदास क्षुल्लक करै वंदन बारंबार।।१।।

## अथ भाषा वाक्यावलि

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

# भूमिका

मैं यह एक शब्द है सो ही इस मैं द्वारा मैं सत्य कहता हूँ। मैं ब्रह्मचारी शरीर का नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है। सो ही मैंने बहुत से जैन दिगंबराचार्यों द्वारा रचित संस्कृत गाथाबंध ग्रंथों के आधार से यह भाषा वाक्यावलि नाम की पुस्तक बनाई है जिसे हे मुमुक्षुजन ! सर्वप्रथम आदि से अंत तक पढ़ लेना, तदनंतर विचार करना कि हो हो हो वेद अर्थात् केवली जिनकी दिव्यध्वनि और शास्त्र अर्थात् महामुनि के वचन उनसे भी शुद्ध परमात्मा नहीं जानने में आता है तथा पाँच इन्द्रिय और छठे मन से भी वह शुद्ध परमात्मा नहीं जानने में आता। हो हो हो कैसे जानने में आता ? गुरु कैसे शुद्ध परमात्मा का अनुभव देता होगा तथा शिष्य उस शुद्ध परमात्मा का कैसे अनुभव लेता होगा ? जिसे साक्षात् शुद्ध परमात्मा का स्वानुभव अचल नहीं उसका मनुष्य जन्म पशु के समान है, उसका जप तप व्रत शीलादिक का करना वृथा है। और विचार करो, हमने ग्रंथों के प्रमाणसहित इस भाषा वाक्यावलि पुस्तक में लिखा है कि विषय-भोगादिक से प्रेम-प्रीति करना सो तो दुःख का ही कारण है, परन्तु अरहंत सिद्ध आचार्यादिक पंच परमेष्ठी से भी प्रेम-प्रीति करना अग्नि के समान दाह-दुःख का कारण

है। विचार करो, किसी पंडित महात्मा गुरु से प्रश्न यही करो कि सुख होने का कारण क्या है, एक पंडित महात्मा के किये गये तुम्हारे प्रश्न के उत्तर से तुमन को यदि लाभ न हो तो बहुत से पंडित महात्माओं से इसी प्रश्न का समाधान लेना। यदि बहुत से पंडित महात्माओं से प्रश्न करने पर भी तुम्हें इसका समाधान-लाभ न मिले तो तुम मुझमें प्रेम-प्रीति धारणा कर मेरे पास आओ। सूचना करूँगा, अच्छे समझदार होगे तो इशारे से समझ लेना मैंने इस भाषा वाक्यावलि का सार सर्व प्रथम अपने हृदय-अंतःकरण में धारण करके उसके बाद यह पुस्तक बनाई है यह निश्चय समझो। किसी मुमुक्षु को यदि इसका सार समझने की इच्छा हो तो मुझ में प्रेम-प्रीति धारण कर मेरे समीप आओ, आओ। नहीं आओ तो आप अपने मनमें ही समझो, अपने अंतःकरण में खोजो देखो विचारो। मेरे समीप आओगे तो यह समझ लेना कि मैं मैले कपड़े के ऊपर रंग नहीं लगाता हूँ, उलटे कलश के ऊपर जल नहीं डालता, हूँ, फूटे कलश में जल नहीं भरता हूँ, मिट्टी के कच्चे कलश में पानी नहीं भरता हूँ, भूखे को भोजन देता हूँ। प्रथम स्वभाव स्वरूप से ही ज्ञान वस्तु है उसे न ज्ञान देता हूँ और न उससे ज्ञान लेता हूँ। तथा जड़ अजीव वस्तु है। उसे ज्ञान देना और उससे ज्ञान लेना वृथा है-संभव नहीं। आओ खुशी से, मेरे वचन, इशारा व सूचना द्वारा तुम्हे तुम्हारे स्वच्छ निर्मल ज्ञानज्योति की प्राप्ति की प्राप्ति होवे तो प्रमाण करना। यदि किसी स्थल पर कथन में, सूचना में व इशारों में चूक जाऊँ तो मेरे प्रति छल ग्रहण नहीं करना।

**भूमिका समाप्त**

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

# क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास रचित

# भाषा वाक्यावली

**अथ भाषा वाक्यावलि लिखते हैं -**

## मंगलाचरण

**सोरठा** चेत करो सुविचार धर्मदास क्षुल्लक कहै।
सर्व सारको सार समझ लियो निश्चै हुई।।१।।

पंच परमेष्ठी, उनमें प्रथम गुरु, इष्ट है णमोः अरहंताण, यह णमोकार मंत्र से प्रसिद्ध है। कैसे हैं अरहंत गुरु ? सिद्ध के तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु मुनि के स्वरूपाचरणं को निश्चय-व्यवहार युक्त दिखला देनेवाले हैं। अरहंत गुरु नहीं होते तो तन-मन-धन-वचन से अतन्मयी ऐसे स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव वस्तु सिद्ध परमेष्ठी की खबर कैसे होती। स्व पर के स्वरूप का अनुभव ज्ञान देनेवाले दिखानेवाले गुरु का ही नाम अरहंत है। गुरु ने चेतन और अचेतन की दशा का भेदभाव कराया है। गुरु का नाम भट्टारक हैं। गुरु का नाम सिद्धसेन है। गुरु के देवेन्द्र कीर्ति आदि अनन्त नाम हैं। तथापि गुरु है सो गुरु ही है। गुरु बिना

ज्ञान ऐसा है जैसे अंधकार में दर्पण। जो सिद्ध होता है उसके पहले वह अरहंत होता है, इसलिये णमोकार मंत्र में `णमो अरहंताणं' के बाद `णमो सिद्धाणं' आता है। समझकर देखा जाय तो अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं, इसलिये पाँचों ही इष्ट हैं, उनमें सर्वप्रथम गुरु इष्ट है, इसलिये सर्व कार्य कर्म-क्रिया का आचरण करने के पूर्व गुरु के चरणों की शरण लेनी चाहिये। जिस प्रकार विधवा स्त्री का श्रृंगार वेश्या के श्रृंगार के समान है उसी प्रकार जिसका गुरु नहीं उसका सर्व आचरण आदिक वृथा है। पूर्व में बड़े-बडे ऋषि मुनि आचार्य हो गये उन्होंने हजारों ग्रंथ रचे। उनका सार गुरु के बिना समझ में नहीं आता। जैसे बाहर दिखाई देनेवाले हाथी के दाँत और हैं और चबानेवाले भीतरी दाँत और हैं वैसे ही पूर्व में जो बड़े-बड़े मुनि आचार्य शास्त्र बना गये वे तो हाथी के बाह्य दाँतवत् समझना। उनका यथार्थ आशय गुरु के बिना समझ में नहीं आता। ग्रंथ के पढ़ने से निर्गन्थ को न भेद पावे -

कुंजी गुरु के हाथ में है सो तो गुरु से ही पावे हैं।।

यदि तुम बड़े-बड़े मुनि आचार्य के रचे हुए संस्कृत गाथा बंध ग्रंथ पढ़ते हो, वाचन करते हो, सुनते हो, सुनाते हो और उनका आशय समझे हो तो प्रकट करो। संशय, भरम और शंका का निवारण करनेवाले गुरु का लक्षण इस प्रकार है जो सर्वाचीन बुद्धिवाला है, सर्व वेद, पुराण और शास्त्र का सार जिसके हृदय में प्रतिभासित है, लोक व्यवहार में प्रसिद्ध है, आशा और तृष्णा जिसके मूल से ही नहीं है, उपशमवान है, क्रोध का अंश भी जिसके नहीं है, प्रश्न का उत्तर पहले से ही जानता है, निःशल्य व्रती है, मन को रजायमान करनेवाला है, सम्यग्ज्ञान गुण का धारी है,

जिसका वचन स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव वस्तु को सूचित करता है वह गुरु। अथवा जिसको भ्रमरहित शास्त्र का ज्ञान है, जिसकी सर्व दोषों से रहित वृत्ति हो, अन्य दूसरों को जिसका स्वस्वरूप ज्ञान का उपदेश देने का परिणाम है, सदाकाल जागती ज्योति जिनेन्द्र मार्ग के वर्तावनेने उत्तम विधि में जो उद्यमी है, अपने से अधिक ज्ञानी के प्रति जो सदाकाल नम्र है, उद्धतपने से रहित है, लोकरीति को जानना है, कोमल परिणामी है, इच्छा-वांछा से रहित है वह गुरु है। वक्ता गुरु का यह लक्षण आत्मानुशासन ग्रंथ में गुणभद्र आचार्य ने कहा है।

निश्चयनय, व्यवहारनय, एकान्तनय-अनेकान्तनय, स्याद्वादनय, द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय इत्यादि नय-न्याय से जो सर्वथा प्रकार अलग है वही साक्षात् जिस अमृत के पीने से अमर हो जावे ऐसे अमृत का पान करता है। यह वार्ता समयप्राभृत ग्रंथ में कुंदकुंद आचार्य ने कही है।

पाप से भी भला नहीं होता और पुण्य से भी भला नहीं होता यह कथन योगसार ग्रंथ में योगीन्द्रचंद्र मुनि ने किया है।

जो सूर्य का प्रकाश चर्म नेत्र द्वारा दिखाई देता है उससे भी परब्रह्म परमात्मा सिद्ध परमेष्ठी का तेज-प्रकाश करोड़ गुणा अधिक है यह कथन भावना बत्रीसी ग्रंथ में भावश्रेणि मुनि ने किया है।

जप-तप, व्रत-शील, ध्यानादिक करो, विषयभोगादिक का त्याग करो, पाँच इन्द्रिय और छठे मन को जीतो, पाप-परिग्रह को त्याग दो, जिस भाव से संकल्प-विकल्प न हो ऐसा भाव करो, बड़े-बड़े सिद्धांत ग्रंथ पढ़ो तो भी जन्म-मरणादिक स्वरूप संसार दुःख से नहीं छूटोंगे। कारण गुरु की आज्ञा बिना यह सब करना वृथा है। यह सूक्त मुक्तावलि में सोमसेन मुनि ने कहा है।

**प्रश्न - गुरु कौन है ?**

**उत्तर -** जिस गुरु के ऊपर कोई दूसरा गुरु न हो वही गुरु है। अथवा जिस गुरु के उपदेश से तुम्हे अपने स्वस्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव की प्राप्ति की प्राप्ति हो उसे ही तू गुरु समझ। जैसे स्त्री को कुमारी रहना योग्य नहीं, विधवा होना भी योग्य नहीं और वेश्या बनकर रहना भी योग्य नहीं। अर्थात् सदा सौभाग्यवती सुहागिन रहना योग्य है। वैसा ही तू तेरा परमार्थ चाहता है तो सदाकाल गुरु की शरण में रह।

जैसे दहीं को माथकर मक्खन निकालने के बाद उसे छाछ में डाल देने पर भी वह उसमें मिलता नहीं, वैसे ही गुरु तुम्हें संसार सागर से निकाल कर बाद में उसी संसार-सागर में डाल देवे तो भी तुम संसार-सागर में डूबोगे नहीं। तथा जैसे जिस स्त्री का पति जीवित है, स्यात् परपुरुष के निमित्त से वह गर्भवती भी हो जाय तो उसे कोई दोष देता नहीं वैसे ही जिसे अरहंत गुरु की शरण है उसे परपदार्थ के निमित्त से कोई दोष भी लग जाय तो वह दोषी होता नहीं। बड़े की शरण लेने का यही फल है। पारस पाषाण से लोहे का स्पर्श होनेपर लोहा सुवर्ण हो जाता है इसमें पारस पाषाण की विशेष अधिकता नहीं, क्योंकि अधिकता तो तब कहने में आती जब वह लोहा को पारस बना लेता। परन्तु अरहंत शिष्य के शरण में आते ही शिष्य को अपने समान बना लेता है, इसलिये अन्य सबसे गुरु की अधिकता है। गुरु का नाम अरहंत है, गुरु का नाम भगवान है, गुरु महंत है, गुरु ज्ञानी है इत्यादि गुरु के अनंत नाम हैं। गुरु है सो गुरु ही है। अब गुरु के चरणों की शरण लेने के लिये शास्त्र के नाम के साथ वाक्यावलि का कथन करता हूँ, सुनो ! वेद अर्थात् केवली की दिव्यध्वनि

तथा शास्त्र अर्थात् महामुनि का वचन तथा पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन इन द्वारा विशुद्ध परमात्मा का ज्ञान नहीं होता, विशुद्ध परमात्मा जानने में नहीं आता यह कथन परमात्म प्रकाश ग्रंथ में योगीन्द्र चंद्र मुनि ने किया है।

'ग्रंथ के पढ़े से निर्ग्रन्थ को न भेद पावै' यह कथन बनारसी विलास में बनारसीदास ने किया है। शास्त्र है सो जाल है। जो इस जाल में भ्रमण करता है उसे परमात्मतत्व की प्राप्ति नहीं होती। यह कथन पद्मनंदि पच्चीसी ग्रंथ में पद्मनंदि मुनि ने किया है। दर्शन ज्ञान चरित्र यह साधक है सो ही बाधक है यह कथन समय प्राभृत ग्रंथ में कुंदकुंद आचार्य ने किया है। 'उनकी गहि गावेगा सो धक्का गजवै का खावेगा तथा उनकी खोजी खोजेगा सो सदा सुखी हो जावेगा यह' यह कथन कहनेवाला कर गया देवागमस्तोत्र में समन्तभद्र मुनि ने इस प्रकार कहा है कि ये चमर सिंहासन भामंडल आदि तीर्थंकरपना मुझे मानना योग्य नहीं, क्योंकि यह समवशमरण आदि विभूति तीर्थंकरपना में व्यावहारिक होने से दोष युक्त है, इसलिये मुझे मानने योग्य नहीं, आज्ञा प्रधानी को मानने योग्य है। कर्म के विधि-निषेध का कथन तथा कर्म ही कर्म का कर्ता है वह कथन इष्टोपदेश ग्रंथ में पूज्यपाद मुनि ने किया है। अरहंत सर्वज्ञ स्वयंसिद्ध परमात्मा के स्वरूप को जानता है परन्तु शब्दों में उनके स्वरूप को नहीं बतला सकता यह कथन ज्ञानार्णव ग्रंथ में शुभचंद्र मुनि ने किया है। योगीश्वर के इन्द्र, जो गणधर तथादिका बहुत खेद करे तो भी शुद्ध परमात्मा का गुणभेद नहीं कह सकते यह कथन कल्याण मंदिर स्तोत्र में कुमुदचंद्र मुनिने किया है। हे भगवन् तुम ही तो शिव हो और तुम ही शिव के मार्ग हो वह कथन भक्तामर स्तोत्र में मानतुंग मुनि ने किया है।

हे जीव ! तू अनन्तबार प्रत्यक्ष केवली के समवशरण में गया। वहाँ अनन्तबार प्रत्यक्ष केवली भगवान की कल्पवृक्ष के पुष्पों के मोतियों के अक्षत रत्नदीपक आदि से अच्छे भावों से पूजा की, प्रत्यक्ष केवली का दर्शन किया और केवली भगवान के श्रीमुख से धर्मोपदेश सुनकर मुनिव्रत तथा शील भी अनन्त बार धारण किया तो भी तू जन्म-मरण के दु:ख संकट से अलग नहीं हुआ - यह कथन परमात्मप्रकाश ग्रंथ में योगीन्द्र चंद्र मुनिने किया है। हे जीव तूने अनंत बार देवादिक के और अनंत बार ही मनुष्य गति के आदि के विषय भोगादिक भोगे तो भी तू तृप्त नहीं हुआ यह कथन आत्मानुशासन ग्रंथ में गुणभद्र आचार्य ने किया है।

ज्ञान बिना कथनी जैसे नाक बिना नथनी।
गुरु बिना ज्ञान जैसे अंधकार में आरसी।।

यह कथन कोई पद्य कहनेवाला कर गया।

समझना और समझाना ये दोनों ही विभ्रम का स्थान है यह कथन ज्ञानार्णव ग्रंथ में शुभचंद्र मुनि ने किया है। जो बुद्धि बंध और मोक्ष के आश्रित है वह झूठी है, यह कथन पद्मनंदि पच्चीसी ग्रंथ में पद्मनंदि मुनि ने किया है। कुछ भी विचार-चिंतवन मत कर, बोल भी मत - यह कथन नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने द्रव्यसंग्रह ग्रंथ में किया है। निश्चय व्यवहार में जगत भरमायो है - यह कथन नाटक समयसार में बनारसीदास ने किया है। मोक्ष है सो भी एक स्वांग है यह कथन आत्मख्याति ग्रंथ में कुंदकुंद आचार्य ने किया है। `णग्गो संसार सायरे भमइ, नग्न है सो ही संसार सागर में भ्रमण करता है' यह कथन अष्टप्राभृत ग्रंथ में कुंदकुंद आचार्य ने किया है। शास्त्र पढ़ने में जिसकी बुद्धि लग रही है वह व्याभिचारिणी है यह कथन पद्मनंदी पच्चीसी में पद्मनंदी मुनि ने किया है। जहाँ

पर्यन्त सत् समाधि नहीं वहीं तक भला भाव बुरा भाव खोटा भाव होता है यह कथन पद्मनंदी पच्चीसी में पद्मनंदी मुनि ने किया है। नय, प्रमाण, न्याय, निक्षेपादिक जितने हैं वे सब उलटी दशा में होते हैं यह कथन पद्मनंदीपच्चीसी ग्रंथ में पद्मनंदी मुनि ने किया है। दर्शन ज्ञान चारित्र से अशुद्धता आती है, स्वभाव शुद्धता में न ज्ञान है, न दर्शन है और न चारित्र है यह कथन समयप्राभृत ग्रंथ में कुंदकुंद आचार्य ने किया है। लोक अन्य तू अन्य लखाय यह कथन स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में स्वामी कार्तिकेय मुनि ने किया है। हम न किसीके कोई न हमारा यह कथन एक पद में कवि ने किया है। काव्य, कोष अलंकार और छंद ग्रंथ बनाता है, परमार्थ की शुभचर्चा भी करता है, मुनिपने से लेकर सुपात्रपने का व्यवहार भी करता है, संतोष तथा अयाचकव्रत भी धारण कर रखा है, निरंजन सदा काल जागती ज्योति परमात्मा की आराधना भी करता है, दूसरे को परमार्थ साधने की शिक्षा भी देता है, अदत्तादान भी नहीं लेता है, नग्न दिगंबर मुद्रा भी धारण कर रखी है, पाप-परिग्रह का त्याग भी किया है, सुधारस अर्थात् आत्मज्ञानरूपी रस में मदोन्मत्त भी है तो भी वह मूर्ख शठ आत्मा-अनात्मा की सत्ता को नहीं जानता है। तथा ध्यान-धारणा भी धारण कर रखी है। पाँच इन्द्रिय और छठे मन का निग्रह भी करता है, किसी पर वस्तु के साथ अपना निज का नाता भी नहीं रखा, सर्व विभूति का त्याग कर एकान्त में योग धारण करके बैठा है, संसार और भोगविलास से विरक्त भी है, किसीके साथ वाद-विवाद भी नहीं करता है, मौन धारण कर रखा है, जिसका क्रोध, मान, माया और लोभ मंद हो गया है, वध बंधन आदि बाईस परीषह वह भी सहता है, क्षमा का पालन भी करता है, तो भी शठ-मूर्ख आत्मा-

अनात्मा की सत्ता नहीं जानता - यह कथन नाटक समयसार ग्रंथ में बनारसीदास ने किया है। जैन, वैष्णव, बोद्ध और शैव आदि छह मतवाले जन्मांध के समान हैं। यह कथन हाथी के दृष्टांत द्वारा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में स्वामी कार्तिकेय मुनि ने किया है। और भी कई मुनियों ने अन्य कई ग्रंथों में यह कथन किया है। बाहुबली एक वर्ष तक गोमम्ट नाम पर्वत पर नग्न दिगंबर होकर खड़े रहे, उनके देह से सर्प और बेलें लिपट गयी, बिजली भी उनके ऊपर पड़े तो भी चलायमान न हो एसी अवस्था तक भी वे पहुँच गये तो भी (इस बीच) उनको निर्ग्रन्थ पद न संभव हुआ यह कथन आदि पुराण में जिनसेन मुनि ने किया है। मैं इसका ओर-पक्ष छोड़ दे यह कथन आत्मानुशासन ग्रंथ में गुणभद्र आचार्यने किया है। मैं इसको मारता हूँ, यह मुझे मारता है, यह मुझे जिलाता है, मैं से जिलाता हूँ ऐसी मान्यता जिसके अंतःकरण में है वह मूढ़ है, मूर्ख है, मिथ्यात्वी है यह कथन आत्मख्याति ग्रंथ में कुंदकुंद आचार्य ने किया है। विषय भोगादिक से प्रेम करना वह तो खोटा है ही, परन्तु अरहंत आदि पाँच परमेष्ठी से प्रेम करना वह भी अग्नि समान दाह-दुःख का कारण है यह कथन पंचास्तिकाय ग्रंथ की टीका में अमृतचंद्र मुनि ने किया है।

अरहंतपना भी छोड़ने योग्य है जहाँ तक अरहंतपना है वहाँ तक पूर्ण परमार्थ की प्राप्ति नहीं यह कथन पंचकल्याणक पूजा-पाठ में सकल कीर्ति मुनि आदि ने किया है यह प्रसिद्ध है। असंख्यात् लोक प्रमाण जो मिथ्यात्वभाव ते ही व्यवहार भाव केवली उक्त हैं, यह कथन नाटक समयसार में बनारसीदास ने किया है। यह जितना नय-न्याय शब्दादिक है उतना ही वाद-विवाद है जितना वाद-विवाद है उतना ही मिथ्यात्व है यह कथन प्रवचनसार ग्रंथ की टीका

में अमृतचंद्र मुनि ने किया है। चेतन-अचेतन की दशा निरवारी है। यह कथन नाटक समयसार में बनारसीदास ने किया है। जो समीचीन वस्तु से, असमीचीन वस्तु से तथा दोनों प्रकार की वस्तु से प्रेम करता है वह दुःखी है यह कथन प्रवचनसार ग्रंथ की टीका में अमृतचंद्र मुनि ने किया है। जो उस लोहे की बेड़ी से बंधा है वह पुरुष भी दुःखी है, और जो सोने की बेड़ी से बंधा है वह पुरुष भी दुःखी है, वैसे ही जो पाप अपराध वैर विरोध चोरी कुशील व्यसनादिक का सेवन करता है वह भला नहीं तथा जो (परमार्थ को न समझकर) दान-पूजा-व्रत-शीलादिक का सेवन करता है वह भी भला नहीं यह कथन समयप्राभृत ग्रंथ में कुंकुंद आचार्य ने किया है। समल विमल न विचारिये यह सिद्ध नहीं ओर अर्थात् भला-बुरा विचार नहीं करना यह कथन नाटक समयासार में बनारसीदास ने किया है। जिन पद नाहिं शरीर का जिन पद चेतन नाहिं जिन वर्णन कुछ और है यह जिन वर्णन नाहिं। यह कथन नाटक समयासार में बनारसीदास ने किया है। असंख्यात लोकप्रमाण जो मिथ्यात्वभाव ते ही व्यवहार भाव केवली उकता हैं। यह कथन नाटक समयसार में बनारसीदासने किया है। बहुत क्या कहूँ, थोड़ा कथन ही बहुत है, गुरु बिना पूर्वोक्त कथन का समाधान नहीं होगा। धनवन्तरि वैद्य भी बीमार हो तो दूसरे वैद्य के हाथ से औषधि लेता है तब प्रसन्न होता है। मरण को ऐसे मारना चाहिये कि वह पुनः किसीको न मार सके वह कथन भगवती आराधना में शिवकोटि स्वामी ने किया है। मूलाधार ग्रंथ में वृट्टकेर स्वामी ने मूल आचरण का कथन किया है। पाप करे परन्तु पाप का फल न प्राप्त हो, पाप बाद में करे परन्तु पाप का फल पहले प्राप्त हो, पहले पाप करे, और पाप को फल बाद में प्राप्त हो,

जिस समय पाप करे उसी समय पाप का फल प्राप्त हो, यह मनुष्य पाप करे और उसका फल हजारों मनुष्य भोगे, हजारों मनुष्य पाप करें परन्तु उसका फल एक मनुष्य भोगे यह कथन पुरुषार्थ सिद्ध उपाय ग्रंथ में अमृतचंद्र मुनि ने किया है। 'कै अपनो पद आप संभालो कै गुरु के मुख सुन वाणी' यह कथन नाटक समयसार में बनारसीदासने किया है। पूर्वोक्त ग्रंथों का आशय गुरु की कृपा बिना नहीं समझ में आवेगा। संसारिक तथा परमार्थ संबंधी शुभाशुभ आदि जितना व्यवहारिक कार्य क्रिया है उतना मनुष्य का व्यवहार है सो गुरु बिना नहीं संभव है।

**इति श्री क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास रचित**
**भाषा वाक्यावलि नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ।**

# श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

## उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

| | ग्रंथ का नाम एवं विवरण | मूल्य |
|---|---|---|
| ०१ | अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल) | - |
| ०२ | आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २०-०० |
| ०३ | अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृत्तोंका संकलन) | १५०-०० |
| ०४ | आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा) | ५०-०० |
| ०५ | आत्मअवलोकन | - |
| ०६ | बृहद द्रव्यसंग्रह | अनुपलब्ध |
| ०७ | द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा) | ३०-०० |
| ०८ | दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन) | ०६-०० |
| ०९ | दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार) | ०६-०० |
| १० | धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर ॉ पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन) | - |
| ११ | दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २५-०० |
| १२ | धन्य पुरुषार्थी | - |
| १३ | धन्य अवतार | - |
| १४ | गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति) | १५-०० |
| १५ | गुरु गिरा गौरव | - |
| १६ | जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन) | ०८-०० |
| १७ | कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २५-०० |
| १८ | कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | ३०-०० |
| १९ | मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन) | ०८-०० |
| २० | मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | - |

| | | |
|---|---|---|
| २१ | मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन) | १०-०० |
| २२ | निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई) | १०-०० |
| २३ | परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत) | - |
| २४ | प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई) | ०४-०० |
| २५ | परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २०-०० |
| २६ | प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन) | २०-०० |
| २७ | प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन) | २०-०० |
| २८ | प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन) | २०-०० |
| २९ | प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन) | २०-०० |
| ३० | प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन) | २०-०० |
| ३१ | प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन) | २०-०० |
| ३२ | प्रवचनसार | अनुपलब्ध |
| ३३ | प्रंचास्तिकाय संग्रह | अनुपलब्ध |
| ३४ | सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक) | १५-०० |
| ३५ | ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत) | - |
| ३६ | सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | १८-०० |
| ३७ | सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | २५-०० |
| ३८ | सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन) | ४०-०० |
| ३९ | समयसार नाटक | अनुपलब्ध |
| ४० | समयसार कलस टीका | अनुपलब्ध |
| ४१ | समयसार | अनुपलब्ध |
| ४२ | तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई) | २०-०० |
| ४३ | तत्थ्य | अनुपलब्ध |
| ४४ | विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन) | १०-०० |
| ४५ | वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन | २०-०० |

## વીતરાગ સત્‌સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ

### ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

| | ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ | મૂલ્ય |
|---|---|---|
| ૦૧ | અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો) | ૦૨-૦૦ |
| ૦૨ | અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો) | અનુપલબ્ધ |
| ૦૩ | આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૬૯, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૦૪ | અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન) | ૧૫૦-૦૦ |
| ૦૫ | અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૦૬ | અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૦૭ | અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૦૮ | અધ્યાત્મ પરાગ | - |
| ૦૯ | બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન) | - |
| ૧૦ | બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો) | - |
| ૧૧ | બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો) | - |
| ૧૨ | ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન) | - |
| ૧૩ | દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત | ૦૨-૦૦ |
| ૧૪ | દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા) | ૦૪-૦૦ |
| ૧૫ | દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો) | ૦૬-૦૦ |
| ૧૬ | ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન) | ૧૦-૦૦ |
| ૧૭ | દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો) | ૧૦-૦૦ |
| ૧૮ | ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ) | ૦૫-૦૦ |
| ૧૯ | ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૨૦ | ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૨૧ | ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |

| | | |
|---|---|---|
| ૨૨ | જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૮-૦૦ |
| ૨૩ | કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૨૩ | કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૨૪ | કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃતો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો) | ૩૦-૦૦ |
| ૨૫ | કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૨૬ | કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૨૭ | ક્રમબદ્ધપર્યાય | - |
| ૨૮ | મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૧૫-૦૦ |
| ૨૯ | નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ) | ૧૦-૦૦ |
| ૩૦ | પરમાત્માપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત) | ૧૫-૦૦ |
| ૩૧ | પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત) | ૧૧-૨૫ |
| ૩૨ | પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો) | અનુપલબ્ધ |
| ૩૩ | પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૩૪ | પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો) | ૩૫-૦૦ |
| ૩૫ | પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો) | ૭૫-૦૦ |
| ૩૬ | પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો) | ૬૫-૦૦ |
| ૩૭ | પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો) | - |
| ૩૮ | પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ) | ૦૩-૦૦ |
| ૩૯ | પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૬-૦૦ |
| ૪૦ | પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૪૧ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૪૦-૦૦ |
| ૪૨ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૮૫-૦૦ |
| ૪૩ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૪૪ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૪૦-૦૦ |
| ૪૫ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૪૬ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૩૦-૦૦ |
| ૪૭ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૨૦-૦૦ |
| ૪૮ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૨૦-૦૦ |

| | | |
|---|---|---|
| ૪૯ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૨૦-૦૦ |
| ૫૦ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૨૦-૦૦ |
| ૫૧ | પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો | ૨૦-૦૦ |
| ૫૨ | પ્રવચનસાર | અનુપલબ્ધ |
| ૫૩ | પ્રચારિસ્તિકાય સંગ્રહ | અનુપલબ્ધ |
| ૫૪ | પદ્મનંદીપંચવિંશતી | - |
| ૫૫ | પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય | અનુપલબ્ધ |
| ૫૬ | રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૫૭ | રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૫૮ | રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૫૯ | સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક) | ૧૫-૦૦ |
| ૬૦ | જ્ઞાનામૃત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃતો) | ૦૬-૦૦ |
| ૬૧ | સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૦-૦૦ |
| ૬૨ | સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૬૩ | સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો) | ૩૫-૦૦ |
| ૬૪ | સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન) | ૨૫-૦૦ |
| ૬૫ | સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૬૬ | સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક- ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો) | ૩૦-૦૦ |
| ૬૭ | તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ) | - |
| ૬૮ | વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃતોનું સંકલન) | ૦૭-૦૦ |
| ૬૯ | વચનામૃત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત પર થયેલાં પ્રવચનો) | ૨૫-૦૦ |
| ૭૦ | વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૧) | - |
| ૭૧ | વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૨) | - |
| ૭૨ | વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૩) | - |
| ૭૩ | વચનામૃત પ્રવચન (ભાગ-૪) | - |
| ૭૪ | યોગસાર | અનુપલબ્ધ |
| ૭૫ | ધન્ય આરાધક | - |

# वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

| | | |
|---|---|---|
| ०१ | प्रवचनसार (गुजराती) | १५०० |
| ०२ | प्रवचनसार (हिन्दी) | ४२०० |
| ०३ | पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती) | १००० |
| ०४ | पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी) | २५०० |
| ०५ | समयसार नाटक (हिन्दी) | ३००० |
| ०६ | अष्टपाहुड (हिन्दी) | २००० |
| ०७ | अनुभव प्रकाश | २१०० |
| ०८ | परमात्मप्रकाश | ४१०० |
| ०९ | समयसार कलश टीका (हिन्दी) | २००० |
| १० | आत्मअवलोकन | २००० |
| ११ | समाधितंत्र (गुजराती) | २००० |
| १२ | बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी) | ३००० |
| १३ | ज्ञानामृत (गुजराती) | १०,००० |
| १४ | योगसार | २००० |
| १५ | अध्यात्मसंदेश | २००० |
| १६ | पद्मनंदीपंचविंशती | ३००० |
| १७ | समयसार | ३१०० |
| १८ | समयसार (हिन्दी) | २५०० |
| १९ | अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित) | ३००० |
| २० | द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती) | १०,००० |
| २१ | द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी) | ६६०० |
| २२ | पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती) | ६१०० |
| २३ | क्रमबद्धपर्याय (गुजराती) | ८००० |
| २४ | अध्यात्मपराग (गुजराती) | ३००० |
| २५ | धन्य अवतार (गुजराती) | ३७०० |
| २६ | धन्य अवतार (हिन्दी) | ८००० |
| २७ | परमामगसार (गुजराती) | ५००० |
| २८ | परमागमसरा (हिन्दी) | ४००० |
| २९ | वचनामृत प्रवचन भाग-१-२ | ५००० |

| | | |
|---|---|---|
| ३० | निर्भ्रांत दर्शननी केडीए (गुजराती) | ५००० |
| ३१ | निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी) | ७००० |
| ३२ | अनुभव प्रकाश (हिन्दी) | २००० |
| ३३ | गुरुगुण संभारणा (गुजराती) | ३००० |
| ३४ | जिण सासणं सव्वं (गुजराती) | २००० |
| ३५ | जिण सासणं सव्वं (हिन्दी) | २००० |
| ३६ | द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती) | २००० |
| ३७ | दस लक्षण धर्म (गुजराती) | २००० |
| ३८ | धन्य आराधना (गुजराती) | १००० |
| ३९ | धन्य आराधना (हिन्दी) | १५०० |
| ४० | प्रवचन नवनीत भाग-१-४ | ५८५० |
| ४१ | प्रवचन प्रसाद भाग-१-२ | २३०० |
| ४२ | पथ प्रकाश (गुजराती) | २००० |
| ४३ | प्रयोजन सिद्धि (गुजराती) | ३५०० |
| ४४ | प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी) | २५०० |
| ४५ | विधि विज्ञान (गुजराती) | २००० |
| ४६ | विधि विज्ञान (हिन्दी) | २००० |
| ४७ | भगवान आत्मा (गुजरात+हिन्दी) | ३५०० |
| ४८ | सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती) | १००० |
| ४९ | सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी) | १५०० |
| ५० | तत्त्वानुशीलन (गुजराती) | ४००० |
| ५१ | तत्त्वानुशीलन (हिन्दी) | २००० |
| ५२ | बीजुं कांई शोध मा (गुजराती) | ४००० |
| ५३ | दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी) | २००० |
| ५४ | मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती) | २५०० |
| ५५ | मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी) | ३५०० |
| ५६ | अमृत पत्र (गुजराती) | २००० |
| ५७ | अमृत पत्र (हिन्दी) | २५०० |
| ५८ | परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती) | १५०० |
| ५९ | परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी) | २५०० |
| ६० | आत्मयोग (गुजराती) | १५०० |
| ६१ | आत्मयोग (हिन्दी) | ३००० |
| ६२ | अनुभव संजीवनी (गुजराती) | १००० |

| | | |
|---|---|---|
| ६३ | अनुभव संजीवनी (हिन्दी) | १००० |
| ६४ | ज्ञानामृत (हिन्दी) | २५०० |
| ६५ | वचनामृत रहस्य | १००० |
| ६६ | दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती) | ३५०० |
| ६७ | कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती) | २५०० |
| ६८ | प्रवचन सुधा (भाग-१) | १४०० |
| ६९ | कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती) | ३५०० |
| ७० | सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती) | ३००० |
| ७१ | गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती) | ३५०० |
| ७२ | आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन | ७५० |
| ७३ | प्रवचन सुधा (भाग-२) | ७५० |
| ७४ | समयसार दोहन | ७५० |
| ७५ | गुरु गुण संभारणा | ७५० |
| ७६ | सुविधिदर्शन | १००० |
| ७७ | समकितनुं बीज | १००० |
| ७८ | स्वरूपभावना | १००० |
| ७९ | प्रवचन सुधा (भाग-३) | १००० |
| ८० | प्रवचन सुधा (भाग-४) | १००० |
| ८१ | कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१ | १००० |
| ८२ | कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२ | १००० |
| ८३ | सुविधि दर्शन (हिन्दी) | १००० |
| ८४ | प्रवचन सुधा (भाग-५) | १००० |
| ८५ | द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१) | १००० |
| ८६ | द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२) | १००० |
| ८७ | वचनामृत रहस्य (हिन्दी) | १००० |
| ८८ | प्रवचन सुधा (भाग-६) | १००० |
| ८९ | राज हृदय (भाग-१) | १५०० |
| ९० | राज हृदय (भाग-२) | १५०० |
| ९१ | अध्यात्मसुधा (भाग-१) | १००० |
| ९२ | अध्यात्मसुधा (भाग-२) | १००० |
| ९३ | गुरु गिरा गौरव (भाग-१) | १००० |
| ९४ | अध्यात्म सुधा (भाग-३) | १००० |

| | | |
|---|---|---|
| ९५ | प्रवचन सुधा (भाग-७) | ७५० |
| ९६ | प्रवचन सुधा (भाग-८) | ७५० |
| ९७ | राज हृदय (भाग-३) | ७५० |
| ९८ | मुक्तिनो मा f (गुजराती( | १००० |
| ९९ | प्रवचन नवनी.त (भाग-३) | १००० |
| १०० | प्रवचन नवनीत (भाग-४) | १००० |
| १०१ | प्रवचन सुधा (भाग-९) | ७५० |
| १०२ | गुरु गिरा गौरव (भाग-२) | ७५० |
| १०३ | प्रवचन सुधा (भाग-२) हिन्दी | १००० |
| १०४ | प्रवचन सुधा (भाग-१०) (गुजराती) | ७५० |
| १०५ | प्रवचन सुधा (भाग-११) (गुजराती) | ७५० |
| १०६ | धन्य आराधक (गुजराती) | ७५० |

# पाठकों की नोंध के लिए

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर